मूल्य : २ रुपया ५० पैसा
प्रथम संस्करण, संवत् २०१५

प्रकाशक—ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी (बनारस)
मुद्रक—ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी ९१८७–१४

ग्रन्थ-परिचय

'महापरिनिब्बानसुत्त' दीघनिकाय के ३४ सूत्रों में से १६ वाँ सूत्र है। यह पालि-त्रिपिटक का सर्वाधिक प्रामाणिक एव महत्त्वपूर्ण सूत्र है। यही एक ऐसा सूत्र है जिसमें भगवान् बुद्ध का अन्तिम जीवन-दर्शन होता है। तथागत का ऐसा क्रमिक जीवन-वृत्तान्त अन्यत्र उपलब्ध नहीं।

भगवान् बुद्ध ने उरुवेला में बोधिवृक्ष के नीचे ई० पूर्व ५८८ में बुद्धत्व प्राप्त किया था और उसके पश्चात् सारनाथ में धर्मचक्र प्रवर्तन। तदुपरान्त ४५ वर्षों तक पूरे मध्य मण्डल में पैदल विचरण कर सद्धर्म का प्रचार किया था। तथागत केवल वर्षाऋतु के तीन मास ही किसी एक विहार में रहते थे। वर्षावास समाप्त होते ही चारिका के लिए निकल पड़ते थे। उन्होंने ४४ वॉ वर्षावास श्रावस्ती के जेतवन महाविहार में किया था। तथागत के जेतवन महाविहार में रहते ही अग्रश्रावक सारिपुत्र और मौद्गल्यायन का परिनिर्वाण हो चुका था। आयुष्मान राहुल, महाप्रजापति गौतमी और स्थविरी यशोधरा भी प्रज्वलित अग्निस्कन्ध के बुझने के समान शान्त हो चुके थे। तथागत ने इन महाभाग स्थविरों और स्थविरियों की अस्थियों पर स्तूपों का निर्माण कर कार्तिक मास में श्रावस्ती मे राजगृह की ओर प्रस्थान किया था।

राजगृह में गृध्रकूट पर्वत पर भगवान् निवास करते थे, जब कि मगधनरेश अजातशत्रु का महामत्री वर्षकार ब्राह्मण भगवान् के पास आया था और अजातशत्रु की वज्जी-अभियान की कामना प्रकट की थी। यहीं से महापरिनिब्बानसुत्त प्रारम्भ होता है जो भगवान् के महापरिनिर्वाण होने तक क्रमबद्ध वर्णन प्रस्तुत करता है।

तथागत की अन्तिम यात्रा

भगवान् बुद्धने राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर कुछ दिनों तक धर्मोपदेश और विहार किया था, तत्पश्चात् उन्होंने अपनी अन्तिम यात्रा प्रारम्भ

इस वर्णन से वैशाली के लिच्छवियों के सगठित होकर शासन-कार्य करने का ज्ञान होता है। राजगृह से भगवान् अम्बलट्ठिका होते हुए नालन्दा पहुँचते हैं। वहाँ पर सारिपुत्र भगवान् की प्रशसा करते हैं। यह अश यहाँ नहीं होना चाहिए। हम पहले कह आए हैं कि सारिपुत्र का परिनिर्वाण पहले ही हो चुका था। सगीतिकारक भिक्षुओ के प्रमाद से यह अश यहाँ आ गया है। नालन्दा से पाटलिग्राम में जाकर भगवान् ने वहाँ के उपासकों की अतिथिशाला में निवास किया और शील के गुणों और दुःशील के अवगुणों पर प्रकाश डाला। इसी भाणवार में हम पाटलिग्राम के निर्माण की भी कथा पढते हैं, जिसके निर्माण का मुख्य उद्देश वज्जियों का प्रतिरोध था। गगा नदी को पार कर भगवान् वज्जी देश में चले जाते हैं। गगा नदी के एक घाट का नाम 'गौतम तीर्थ' रखा जाता है।

दूसरे भाणवार में चार आर्यसत्यों का उपदेश है। धर्मादर्श नामक एक ऐसी धर्म की कसौटी को भगवान् ने प्रस्तुत किया है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपने परलोक के सम्बन्ध में अनुमान लगा सकता है कि परलोक में उसकी क्या गति होगी। वैशाली की अम्बपाली नामक प्रसिद्ध गणिका अपने आम्रवन में तथागत के विहार करने के समाचार को पाकर उनके दर्शनार्थ आती है और भगवान् को अपने यहाँ भोजन के लिए निमन्त्रित करती है। वहाँ हम देखते हैं कि भगवान् लिच्छवी राजाओं का निमन्त्रण अस्वीकार कर देते हैं और अम्बपाली के यहाँ ही भोजन ग्रहण करते हैं। वहीं हम भगवान् को लिच्छवियों की तुलना त्रायस्त्रिंस देवों से करते हुए देखते हैं। लिच्छवी गणतन्त्र के राजाओं की वेष-भूषा और सुख-सौख्य की एक झलक यहाँ हमें प्राप्त होती है। वैशाली में ही भगवान् बीमार पडते हैं और अपने वृद्ध होने का उन्हें अनुभव होने लगता है। इस समय वे अस्सी वर्ष के हो चुके हैं।

तीसरे भाणवार में भगवान् वैशाली के चैत्यों की रमणीयता का वर्णन करते हैं और कहते हैं कि जिन्होंने चारों ऋद्धिपादों की भावना

बतलाते हैं। आनन्द के विलाप करने की बात को जानकर उन्हे अपने पास बुलाते हैं और उनके गुणों की प्रशसा करते हुए चक्रवर्ती के गुणों से उनके गुणों की तुलना करते हैं। तत्कालीन भारत के प्रसिद्ध नगर चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और वाराणसी की अपेक्षा कुशीनारा के छोटा नगर होते हुए भी, महासुदर्शन जातक कह कर भगवान् उसकी महत्ता पर प्रकाश डालते है। कुशीनारा के मल्ल सपरिवार तथागत की वन्दना करते हैं। सुभद्र परिव्राजक भगवान् का अन्तिम शिष्यत्व प्रात करता है औप अर्हत्व का साक्षात्कार कर कृतकृत्य हो जाता है।

छठें भाणवार में तथागत भिक्षुओं को अन्तिम उपदेश देते हैं—(१) धर्म और विनय को शास्ता मानना, (२) आयु के अनुसार छोटे को आवुस और बड़े को आयुष्मान् या भन्ते कहना, (३) इच्छा होने पर छोटे-छोटे शिक्षापदों को छोड देना, (४) छन्द भिक्षु को ब्रह्मदण्ड देना। इन विधानों के साथ तथागत की अन्तिम वाणी निकल पडती है—"हन्त! भिक्षुओ! अब तुम्हें कहता हूँ—सस्कार नाशवान् हैं, अप्रमाद के साथ जीवन के लक्ष्य का सम्पादन करो।" इसके पश्चात् तथागत ने ध्यानों को प्रास किया और उनका महापरिनिर्वाण हो गया। महापरिनिर्वाण के पश्चात् मल्लों ने सात दिनों तक मृत-शरीर का सम्मान-सत्कार किया। आठवें दिन चक्रवर्ती राजा की भाँति हिरण्यवती के तीर मुकुट बन्धन नामक चैत्य में दाह करना चाहा। आयुष्मान् महाकाश्यप ने जब भिक्षुओं सहित चिता की वन्दना एव प्रदक्षिणा कर ली तब चिता जल उठी। अस्थियों के विभाजन के प्रश्न को लेकर बहुत बडा विवाद उत्पन्न हुआ, जिसे द्रोण ब्राह्मण ने शान्त किया और अस्थियाँ आठ बराबर भागों में बाँट दी गईं, विभिन्न आठ राज्यों में धातु-स्तूप बने। कुम्भ-स्तूप और अङ्गार-स्तूप का भी निर्माण हुआ। यहाँ हम देखते हैं कि उस समय कुशीनारा के चतुर्दिक, उत्तरी-पूर्वी भारत में नौ शक्तियाँ शासन कर रही थीं, जिनमें वैशाली के लिच्छवी, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लकप्प के

भगवान् ने वैशाली के रथिकों (= लिच्छवियों) को पॉच दुर्लभ रत्नों का उपदेश दिया।

(२) भोजनोपरान्त तथागत ने अम्बपाली से कहा—'बुद्ध-प्रमुख चातुर्दिश सघ के लिए अपना उद्यान दान कर दो।' और उसने दान कर दिया। तब भगवान् ने दो श्लोकों से अनुमोदन करने के उपरान्त धर्मोपदेश किया।

(३) वैशाली में विशतय नामक ब्राह्मण के घर तथागत ने भोजन-ग्रहण किया था और ३ श्लोकों से उपदेश किया था। उस समय उस जनपद में दुर्भिक्ष था, भिक्षा मिलनी कठिन थी, अतः भगवान् ने सभी भिक्षुओं को एकत्र करा आसपास अपने परचितों के अनुसार वर्षावास करने का आदेश दिया। वर्षावास के मध्य में भगवान् सख्त बीमार पड गये।

(४) पावा में भगवान् जातिवन में विहार करते थे। चुन्द कर्मारपुत्र वहीं जाकर भगवान् को भोजन के लिए निमत्रित किया था। उसने तथागत को त्रिवर्षीय 'शूकर मार्दव' के साथ भोजन खिलाया था, जो कि लोक में दुर्लभ माना जाता है (अथ चुन्दः कर्मारपुत्र ओदन त्रिवर्प-शुकरमार्दवं लोके दुर्लभं भोजन बुद्धाय संघाय च पर्यवेशयत्)। यहाँ सुत्तनिपात का चुन्दसुत्त (१,५) भी पूर्णरूप से श्लोकबद्ध दिया गया है।

(५) यहाँ पुक्कुस मल्लपुत्र का नाम 'रोजमल्ल' आया है। रोजमल्ल ने भगवान् से प्रार्थना की है कि जब आप पावा आएँ, तब मेरे यहाँ अवश्य आएँ।

(६) पावा से कुशीनारा जाते समय जब तथागत ने आनन्द से जल माँगा और आनन्द ने कहा कि इस छोटी नदी का पानी गँदला है, तब हिमालय में रहने वाला एक देवता परिशुद्ध जल लेकर आया और भगवान् को पीने के लिए दिया।

(७) ककुत्था का नाम ककुत्सा है। उसमें एक नागराजा रहता था।

(८) भगवान् जब पावा और कुशीनारा के मध्य मार्ग में जा रहे थे,

(१७) द्रोण ब्राह्मण अजातशत्रु का सन्देश लेकर कुशीनारा गया था और उसने ही सबको समझा कर अस्थियों का विभाजन कराया था।

(१८) पावाके मल्लों ने अगार पर स्तूप बनाया था और पिप्पलिवन के मौर्यों ने अस्थियों पर। ग्यारहवाँ स्तूप जन्मकाल्कि केशों पर बना था। (एकादशः च जन्मकालिके केशे)।

(१९) भोगनगर का नाम भोजनगर और कुशीनारा का नाम कुशीनगर है।

(२०) चीनी सूत्र के अन्तमें कुछ श्लोक हैं, जो पालि सूत्र मे नहीं हैं। अन्तिम श्लोक इस प्रकार है —

> शालपुष्पै रति समृद्धैर्नानावर्णै प्रभास्वरै ।
> तस्य मूले जन्मस्थान तत्रैव तथागत परिनिर्वृत ॥
> निर्वृतो महाकरूणो वहु जनाभि वन्दित ।
> सर्व भय विनिर्मुक्त निर्वाण च प्रासवान ॥

चीनी महापरिनिव्वानसुत्त का संस्कृतानुवाद महापण्डित श्री राहुल-साकृत्यायन ने किया है। यह पूरा सूत्र शोधपत्रिका में जून सन् १९५५ में प्रकाशित हुआ था।

ज्ञातव्य विषय

महापरिनिव्वानसुत्त में बुद्धकालीन उत्तर भारत की अनेक ज्ञातव्य बातें आई हुई हैं। इसमें तत्कालीन समाज, राजनीति, भूगोल, आर्थिक-व्यवस्था, धार्मिक एव सास्कृतिक प्रवृत्ति आदि विभिन्न विषयों का समावेश है। उस समय के छ. धर्मगुरुओं (=शास्ताओं), नगरों, निगमों, सरिताओं, वनों, मार्गों, चैत्यों आदि का वर्णन भी इस सूत्र में सन्निविष्ट है। देवी-देवताओं के प्रति लोगों का विश्वास, भूगोल एव खगोल शास्त्र की जानकारी की परि-सीमा, वास्तु एव स्थापत्य-कला, गृह-उद्योग, महिलाओं के प्रति जन समाज तथा श्रमण-समाज की भावना, अतिथि-सत्कार, गणतन्त्रों की समृद्धि एव सगठन आदि बातों का भी अध्ययन इस सूत्र द्वारा किया जा सकता है।

विषय-सूची

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

महापरिनिब्बानसुत्तं

[१]

राजगहे

१ एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। तेन खो पन समयेन राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो वज्जी अभियातुकामो होति। सो एवमाह—'अहं हि इमे वज्जी एवं महिद्धिके एवं महानुभावे, उच्छेच्छामि वज्जी, विनासेस्सामि वज्जी अनयब्यसनं आपादेस्सामि वज्जी'ति।

२. अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो वस्सकारं मगधमहामत्तं आमन्तेसि—

एहि त्वं ब्राह्मण ! येन भगवा तेनुपसङ्कम उपसङ्कमित्वा मम वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्दाहि। अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छ—'राजा भन्ते ! मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो भगवतो पादे सिरसा वन्दति। अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छती'ति। एवञ्च वदेहि—'राजा भन्ते ! मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो वज्जी अभियातुकामो। सो एवमाह—'अहं हि इमे वज्जी एवं महिद्धिके एवं महानुभावे उच्छेच्छामि वज्जी विनासेस्सामि वज्जी अनयब्यसनं आपादेस्सामि वज्जी'ति। यथा च ते भगवा ब्याकरोति तं साधुकं उग्गहेत्वा मम आरोचेय्यासि। न हि तथागता वितथं भणन्ती'ति।

३ 'एवं भो'ति खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुस्स वेदेहिपुत्तस्स पटिस्सुत्वा भद्रानि भद्रानि यानानि योजापेत्वा भद्रं भद्रं यानं अभिरुहित्वा भद्रेहि भद्रेहि यानेहि राजगहम्हा निय्यासि येन गिज्झकूटो

[१]

राजगृहमें

१ ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् राजगृहमें[1] गृध्रकूट पर्वतपर विहार कर रहे थे। उस समय मगधका राजा अजातशत्रु वैदेही-पुत्र वज्जियोंपर चढ़ाई (=अभियान) करना चाहता था। वह ऐसा कहता था—'मैं इन ऐसे महर्द्धिक (=वैभवशाली), ऐसे महानुभाव (=महा-प्रतापी) वज्जियों[2]को उच्छिन्न करूँगा, वज्जियोंका विनाश करूँगा, वज्जियोंपर आफत ढाऊँगा।

२ तब मगधके राजा वैदेही-पुत्र अजातशत्रुने मगधके महामात्य (=महामन्त्री) वर्षकार ब्राह्मणसे कहा—

"आओ ब्राह्मण! जहाँ भगवान् हैं, वहाँ तुम जाओ। जाकर मेरे वचनसे भगवान्के पैरोंमें सिरसे वन्दना करो। निरोगी-भाव, स्वास्थ्य, स्फूर्ति, बल, सुख-विहार पूछो—'भन्ते! राजा वन्दना करता है, निरोगी-भाव पूछता है।' और यह कहो—'भन्ते! राजा वज्जियोंपर चढ़ाई करना चाहता है, वह ऐसा कहता है—'मैं इन वज्जियोंको उच्छिन्न करूँगा।' भगवान् जैसा तुमसे बोलें, उसे यादकर (आकर) मुझसे कहो, तथागत अ-यथार्थ (=वितथ) नहीं बोला करते।"

३ "अच्छा भो!" कह वर्षकार ब्राह्मण अच्छे-अच्छे यानोंको

---

१ वर्तमान् राजगिरि, जिला पटना (बिहार)।

२ वर्तमान् मुजफ्फरपुर, चम्पारन और दरभगाके जिले।

जुतवाकर, बहुत अच्छे यानपर आरूढ हो, अच्छे यानोंके साथ, राजगृहसे निकला, (और) जहाँ गृध्रकूट पर्वत था, वहाँ चला। जितनी यानकी भूमि थी, उतना यानसे जाकर, यानसे उतर पैदलही, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ समोदनकर एक ओर बैठा, एक ओर बैठकर भगवान्से बोला—"हे गौतम! राजा आप गौतमके पैरोंमें सिरसे वन्दना करता है । वज्जियोको उच्छिन्न करूँगा ।"

सात अपरिहाणीय-धर्म

४ "उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान्के पीछे (खडे) भगवान्को पखा झल रहे थे। तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको सबोधित किया—

(१) "आनन्द! क्या तूने सुना है, वज्जी (सम्मतिके लिए) बराबर बैठक (=सन्निपात) करते हैं, सन्निपात-बहुल हैं?"

"सुना है, भन्ते! वज्जी बराबर ॰।"

"आनन्द! जबतक वज्जी बराबर बैठक करते रहेंगे, सन्निपात-बहुल रहेंगे, (तबतक) आनन्द! वज्जियोंकी वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।

(२) "क्या आनन्द! तूने सुना है, वज्जी एक साथ ही बैठक करते हैं, एक साथ ही उठते हैं, वज्जी एक साथ ही करणीय (=कर्त्तव्य) को करते हैं?"

'सुतं मे तं भन्ते ! वज्जी समग्गा सन्निपतन्ति समग्गा वुट्ठहन्ति समग्गा वज्जिकरणीयानि करोन्ती'ति !"

'यावकीवञ्च आनन्द ! वज्जी समग्गा सन्निपतिस्सन्ति, समग्गा वुट्ठहिस्सन्ति समग्गा वज्जिकरणीयानि करिस्सन्ति, वुद्धियेव आनन्द ! वज्जीनं पाटिकङ्खा नो परिहानि !"

[३] 'किन्ति ते आनन्द ! सुतं वज्जी अप्पञ्ञत्तं न पञ्ञपेन्ति पञ्ञत्तं न समुच्छिन्दन्ति यथापञ्ञत्ते पोराणे वज्जिधम्मे समादाय वत्तन्ती'ति ?"

'सुत मे तं भन्ते ! वज्जी अप्पञ्ञत्तं न पञ्ञपेन्ति पञ्ञत्तं न समुच्छिन्दन्ति यथापञ्ञत्ते पोराणे वज्जिधम्मे समादाय वत्तन्ती'ति ।"

'यावकीवञ्च आनन्द ! वज्जी अप्पञ्ञत्तं न पञ्ञपेस्सन्ति, पञ्ञत्तं न समुच्छिन्दिस्सन्ति यथापञ्ञत्ते पोराणे वज्जिधम्मे समादाय वत्तिस्सन्ति वुद्धियेव आनन्द ! वज्जीनं पाटिकङ्खा नो परिहानि ।

[४] 'किन्ति ते आनन्द ! सुतं वज्जी ये ते वज्जीनं वज्जिमहल्लका ते सक्करोन्ति गरुकरोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति तेसञ्च सोतब्बं मञ्ञन्ती'ति ?

"सुतं मे तं भन्ते ! वज्जी ये ते वज्जीनं वज्जिमहल्लका ते सक्करोन्ति गरुकरोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति तेसञ्च सोतब्बं मञ्ञन्ती'ति ।

'यावकीवञ्च आनन्द ! वज्जी ये ते वज्जीनं वज्जिमहल्लका ते सक्करिस्सन्ति गरुकरिस्सन्ति मानेस्सन्ति पूजेस्सन्ति तेसञ्च सोतब्बं मञ्ञिस्सन्ति वुद्धियेव आनन्द ! वज्जीनं पाटिकङ्खा नो परिहानि ।

[५] "किन्ति ते आनन्द ! सुतं वज्जी या ता कुलित्थियो कुलकुमारियो ता न ओक्कस्स पसय्ह वासेन्ती'ति ?"

'सुना है, भन्ते! ।'

"आनन्द! जबतक ०।'

(३) "क्या सुना है, वज्जी अप्रज्ञप्त (=अवधानिक) को प्रज्ञप्त (=विहित) नहीं करते, प्रज्ञप्त (=विहित) का उच्छेद नहीं करते। जैसे प्रज्ञप्त हैं, वैसे ही पुराने वज्जि-धर्म (=नियम) को ग्रहण कर, रहते हैं?"

"भन्ते! सुना है ।"

"आनन्द! जब तक ।"

[४] "क्या आनन्द! तूने सुना है—वज्जियोंके जो महल्लक (=वृद्ध) हैं, उनका (वह) सत्कार करते हैं, गौरव करते हैं, मानते हैं, पूजते हैं, उनकी (बात) सुनने योग्य मानते हैं?"

"भन्ते! सुना है ।"

"आनन्द! जब तक। ०"

[५] "क्या आनन्द! तूने सुना है—जो वह कुल स्त्रियाँ हैं, कुल-कुमारियाँ हैं, उन्हें (वह) छीनकर, जबर्दस्ती नहीं बसाते?"

"सुतं मे तं भन्ते ! वज्जी या ता कुलित्थि
ता न ओक्कस्स पसय्ह वासेन्ती'ति।"

'यावकीवञ्च आनन्द ! वज्जी या ता कुलित्थियो कुल-
कुमारियो ता न ओक्कस्स पसय्ह वासेस्सन्ति वुद्धियेव आनन्द !
वज्जीनं पाटिकङ्खा नो परिहानि।"

[६] 'किन्ति ते आनन्द ! सुतं वज्जी यानि तानि वज्जीनं
वज्जिचेतियानि अब्भन्तरानि चेव बाहिरानि च, तानि सक्करोन्ति
गरुकरोन्ति मानेन्ति पूजेन्ति तेसञ्च दिन्नपुब्बं कतपुब्बं धम्मिकं
बलिं नो परिहापेन्ती'ति ?"

"सुतं मे तं भन्ते ! वज्जी यानि तानि वज्जीनं वज्जिचेतियानि
अब्भन्तरानि चेव बाहिरानि च तानि सक्करोन्ति गरुकरोन्ति
मानेन्ति पूजेन्ति तेसञ्च दिन्नपुब्बं धम्मिकं बलिं नो परिहा-
पेन्ती'ति।

'यावकीवञ्च आनन्द ! वज्जी यानि तानि वज्जीनं वज्जि-
चेतियानि अब्भन्तरानि चेव बाहिरानि च तानि सक्करिस्सन्ति
गरुकरिस्सन्ति मानेस्सन्ति पूजेस्सन्ति तेसञ्च दिन्नपुब्बं
कतपुब्बं धम्मिकं बलिं नो परिहापेस्सन्ति, वुद्धियेव आनन्द !
वज्जीनं पाटिकङ्खा नो परिहानि।"

[७] "किन्ति ते आनन्द ! सुतं वज्जीनं अरहन्तेसु धम्मिका-
रक्खावरणगुत्ति सुसंविहिता किन्ति अनागता च अरहन्तो
विजितं आगच्छेय्युं आगता च अरहन्तो विजिते फासु
विहरेय्युन्ति ?

'सुतं मे तं भन्ते ! वज्जीनं अरहन्तेसु धम्मिकारक्खावरण-
गुत्ति सुसंविहिता किन्ति अनागता च अरहन्तो विजितं आग-
च्छेय्युं आगता च अरहन्तो विजिते फासु विहरेय्युन्ति।

"यावकीवञ्च आनन्द ! वज्जीनं अरहन्तेसु धम्मिका-
रक्खावरणगुत्ति सुसंविहिता भविस्सति किन्ति अनागता च

"भन्ते ! सुना है ।"

"आनन्द ! जब तक ।"

[६] "क्या आनन्द ! तूने सुना है—वज्जियोंके (नगरके) भीतर या बाहरके जो चैत्य (=चौरा=देव-स्थान) हैं, वह उनका सत्कार करते हैं, पूजते हैं। उनके लिये पहले किये गये दानको, पहले की गई धर्मानुसार बलि (=वृत्ति) को, लोप नहीं करते ?"

"भन्ते ! सुना है ।"

"आनन्द ! जब तक ।"

[७] "क्या आनन्द ! तूने सुना है—वज्जी लोग अर्हतों (=पूज्यों) की अच्छी तरह धार्मिक (= धर्मानुसार) रक्षा, आवरण, गुप्ति करते हैं, जिससे कि भविष्यमें अर्हत् राज्यमें आवें, आये अर्हत् राज्यमें सुखसे विहार करें ?"

"भन्ते ! सुना है ।"

"आनन्द ! जब तक ।"

अरहन्तो विजितं आगच्छेय्युं आगता च अरहन्तो विजिते फासुं विहरेय्युन्ति, वुद्धियेव आनन्द ! वज्जीनं पाटिकङ्खा, नो परिहानी'ति ।"

५. अथ खो भगवा वस्सकारं ब्राह्मणं मगधमहामत्तं आमन्तेसि— 'एकमिदाहं ब्राह्मण ! समयं वेसालियं विहरामि सारन्ददे चेतिये तत्राहं वज्जीनं इमे सत्त अपरिहानिये धम्मे देसेसिं । यावकीवञ्च ब्राह्मण ! इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा वज्जीसु ठस्सन्ति इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु वज्जी सन्दिस्सिस्सन्ति वुद्धियेव ब्राह्मण ! वज्जीनं पाटिकङ्खा नो परिहानी'ति ।

एवं वुत्ते वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो भगवन्तं एतदवोच— 'एकमेकेनपि भो गोतम ! अपरिहानियेन धम्मेन समन्नागतानं वज्जीनं वुद्धियेव पाटिकङ्खा नो परिहानि । को पन वादो सत्तहि अपरिहानियेहि धम्मेहि ? अकरणीया भो गोतम ! वज्जी रञ्ञा मागधेन अजातसत्तुना वेदेहिपुत्तेन यदिदं युद्धस्स अञ्ञत्र उपलापनाय अञ्ञत्र मिथुभेदा । हन्द च दानि मयं भो गोतम ! गच्छाम बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया'ति ।

यस्स दानि त्वं ब्राह्मण ! कालं मञ्ञसी'ति ।

अथ खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा उट्ठायासना पक्कामि ।

६. अथ खो भगवा अचिरपक्कन्ते वस्सकारे ब्राह्मणे मगध महामत्ते आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"गच्छ त्वं आनन्द ! यावतिका भिक्खू राजगहं उपनिस्साय विहरन्ति ते सब्बे उपट्ठानसालायं सन्निपातेही'ति ।

'एवं भन्ते'ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा यावतिका भिक्खू राजगहं उपनिस्साय विहरन्ति ते सब्बे

५ तब भगवान्ने वर्षकार ब्राह्मणको सम्बोधित किया—

"ब्राह्मण ! एक सयम मैं वैशालीके[1] सारन्दद चैत्य में विहार करता था। वहाँ मैंने वज्जियों को यह सात अपरिहाणीयधर्म (=पतन-विरोधी नियम) कहे। जब तक ब्राह्मण ! यह सात अपरिहाणीय धर्म वज्जियोंमें रहेंगे, इन सात अपरिहाणीय धर्मोंमें वज्जी (लोग) दिखलाई पड़ेंगे, (तब तक) ब्राह्मण ! वज्जियोंकी वृद्धि ही समझना, हानि नहीं।" ऐसा कहनेपर ' वर्षकार ब्राह्मण भगवान् से बोला—हे गौतम ! (इनमेंसे) एक भी अपरिहणीय-धर्मसे वज्जियोंकी वृद्धि ही समझनी होगी, सात अपरिहाणीय धर्मोंकी तो बात ही क्या ? हे गौतम ! राजा को उपलाप (=रिश्वत देना), या आपसमें फूटको छोड, युद्ध करना ठीक नहीं। हन्त ! हे गौतम ! अब हम जाते हैं, हम बहु कृत्य, बहु-करणीय (=बहुत कामवाले) हैं ।"

"ब्राह्मण ! जिसका तू काल समझता है।"

"तब मगध महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान्के भाषणको अभिनन्दनकर, अनुमोदनकर, आसनसे उठकर, चला गया।

६ तब भगवान्ने वर्षकार ब्राह्मणके जानेके थोडी ही देर बाद आयुष्मान् आनन्दको सम्बोधित किया—

"जाओ, आनन्द ! तुम जितने भिक्षु राजगृहके आसपास विहरते हैं, उन सबको उपस्थान शालामें एकत्रित करो।"

"अच्छा, भन्ते ! ।"

---

१ वर्तमान् बसाढ़, जिला मुजफ्फरपुर, (विहार)।

"भन्ते ! भिक्षुसंघको एकत्रित कर दिया, अब भगवान् जिसका समय समझें।"

तब भगवान् आसनसे उठकर जहाँ उपस्थान-शाला थी, वहाँ जा, बिछे आसन पर बैठे। बैठ कर भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—"भिक्षुओ ! तुम्हें सात अपरिहाणीय-धर्म उपदेश करता हूँ, उसे सुनो कहता हूँ।"

"अच्छा, भन्ते ! ।"

"[१] भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु बार बार बैठक करनेवाले, सन्निपात बहुल रहेंगे, (तब तक) भिक्षुओ ! भिक्षुओंकी वृद्धि समझना, हानि नहीं। [२] जब तक भिक्षुओ ! भिक्षु एक हो बैठक करेंगे, एक हो उत्थान करेंगे, एक हो संघके करणीय (कामों) को करेंगे, (तब तक) भिक्षुओ ! भिक्षुओंकी वृद्धि ही समझना, हानि नहीं। [३] जब तक अप्रज्ञप्तों (=अ-विहितों) को प्रज्ञप्त नहीं करेंगे, प्रज्ञप्तका उच्छेद नहीं करेंगे, प्रज्ञप्त शिक्षा-पदों (=विहित भिक्षु-नियमों) के अनुसार चलेंगे । [४] जब तक जो वह वृद्ध, चिरप्रव्रजित, संघके पिता, संघके नायक, स्थविर भिक्षु हैं, उनका सत्कार करेंगे, गौरव करेंगे, मानेंगे, पूजेंगे, उन की बात को सुनने योग्य मानेंगे । [५] जब तक पुन: पुन: उत्पन्न होनेवाली तृष्णाके वशमें नहीं पड़ेंगे । [६] जब तक भिक्षु आरण्यक शयनासन (=वनकी कुटियों) की इच्छावाले

हानि। [७] यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू पच्चत्तञ्ञेव सतिं
उपट्ठपेस्सन्ति, किन्ति अनागता च पेसला सब्रह्मचारी
आगच्छेय्युं, आगता च पेसला सब्रह्मचारी फासुं विहरेय्युन्ति,
वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि।

यावकीवञ्च भिक्खवे ! इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा
भिक्खूसु ठस्सन्ति इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु
भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटि-
कङ्खा नो परिहानि।

७ अपरेपि वो भिक्खवे ! सत्त अपरिहानिये धम्मे देसे-
स्सामि तं सुणाथ साधुकं मनसिकरोथ भासिस्सामी'ति।
'एवं भन्ते'ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं भगवा एतद-
वोच—[१] यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू न कम्मारामा
भविस्सन्ति न कम्मरता न कम्मारामतमनुयुत्ता वुद्धियेव
भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि। [२] यावकी-
वञ्च भिक्खवे ! भिक्खू न भस्सारामा भविस्सन्ति न भस्स-
रता न भस्सारामतमनुयुत्ता वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं
पाटिकङ्खा नो परिहानि। [३] यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू
न निद्दारामा भविस्सन्ति न निद्दारामतमनुयुत्ता वुद्धियेव
भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि। [४] यावकी-
वञ्च भिक्खवे ! भिक्खू न सङ्गणिकारामा भविस्सन्ति न सङ्ग-
णिकरता न सङ्गणिकारामतमनुयुत्ता वुद्धियेव भिक्खवे !
भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि। [५] यावकीवञ्च भिक्खवे !
भिक्खू न पापिच्छा भविस्सन्ति न पापिकानं इच्छानं वसं
गता वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि।
[६] यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू न पापमित्ता भविस्सन्ति
न पापसहाया न पापसम्पवङ्का वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं
पाटिकङ्खा नो परिहानि। [७] यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू

रहेंगे॰ । [७] जब तक भिक्षुओ ! हर एक भिक्षु यह याद रखेगा कि अनागत (=भविष्य) में सुन्दर सब्रह्मचारी आवें, आये हुए (=आगत) सुन्दर सब्रह्मचारी सुखसे विहरें, (तब तक) ॰ ।

भिक्षुओ ! जब तक यह सात अ परिहाणीय-धर्म (भिक्षुओंमें) रहेंगे, (जब तक) भिक्षु इन सात अ परिहाणीय धर्मोंमें दिखाई देंगे, (तब तक) ॰ ।

७ "भिक्षुओ ! और भी सात अ परिहाणीय धर्मोंको कहता हूँ। उसे सुनो ॰ । । [१] भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु (सारे दिन चीवर आदिके) काम में लगे रहनेवाले (=कर्माराम), कर्मरत, कर्मारामता-युक्त नहीं होंगे । (तब तक) । [२] भिक्षुओ ! जब तक भिक्षु बकवादमे लगे रहने वाले (=भस्साराम), भस्सरत, भस्सारामता-युक्त नहीं होंगे ॰ । [३] ॰ निद्राराम, निद्रा रत, निद्रा रामता-युक्त नहीं होंगे । [४] ॰ सगणिकारामता युक्त नहीं होंगे । [५] पापेच्छ (=बदनीयत), पाप-इच्छाओंके वशमें नहीं होंगे । [६] पाप-मित्र (=बुरे मित्रोंवाले),

न ओरमत्तकेन विसेसाधिगमेन अन्तरा वोसानं आपज्जिस्सन्ति, वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि ।

यावकीवञ्च भिक्खवे ! इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति इमेसु च सत्तसु अपरिहानियेसु धम्मेसु भिक्खू सन्दिस्सिस्सन्ति, वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि ।

८. अपरेपि वो भिक्खवे ! सत्त अपरिहानिये धम्मे देसेस्सामि तं सुणाथ साधुकं मनसिकरोथ, भासिस्सामी'ति । 'एवं भन्ते'ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं । भगवा एतदवोच—

[१] यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू सद्धा भविस्सन्ति [२] हिरिमना भविस्सन्ति [३] ओत्तप्पी भविस्सन्ति, [४] बहुस्सुता भविस्सन्ति [५] आरद्धवीरिया भविस्सन्ति [६] उपट्ठितस्सती भविस्सन्ति [७] पञ्ञवन्तो भविस्सन्ति वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा नो परिहानि ।

यावकीवञ्च भिक्खवे ! इमे सत्त अपरिहानिया धम्मा भिक्खूसु ठस्सन्ति वुद्धियेव भिक्खवे ! भिक्खूनं पाटिकङ्खा, नो परिहानि ।

९. अपरेपि वो भिक्खवे ! सत्त अपरिहानिये धम्मे देसेस्सामि तं सुणाथ साधुकं मनसिकरोथ भासिस्सामी'ति । एवं भन्ते'ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं भगवा एतदवोच—

[१] यावकीवञ्च भिक्खवे ! भिक्खू सतिसम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति [२] धम्मविचयसम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति [३] वीरियसम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति [४] पीतिसम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति [५] पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गं भावेस्सन्ति [६] समाधि-

पाप सहाय, बुराईकी ओर झुकानवाले न होंगे॰॰। [७] ॰ थोड़ेसे विशेष (=योग साफल्य) को पाकर बीचमें न छोड़ देंगे । ॰ ।

८ "भिक्षुओ! और भी सात अ-परिहाणीय-धर्मोंको कहता हूँ ॰। । [१] भिक्षुओ! जब तक भिक्षु श्रद्धालु होंगे ॰॰। [२] (पापसे) लज्जाशील (=ह्रीमान् होंगे ॰॰। [३] (पापसे) भय खाने वाले (=अपत्रपी) होंगे । [४] ॰ बहुश्रुत ॰॰। [५] उद्योगी (=आरब्ध वीर्य) ॰। [६] याद रखनेवाले (=उपस्थित स्मृति) ॰। [७] प्रज्ञावान् होंगे । ॰ ।

९ "भिक्षुओ। और भी सात अ-परिहाणीय-धर्मोंको । [१] भिक्षुओ! जब तक भिक्षु स्मृतिसंबोध्यंग की भावना करेंगे धर्म-विचय-संबोध्यंगकी । [३] ॰ वीर्य संबोध्यंग ॰। [४] प्रीति संबोध्यंग । [५] प्रश्रब्धि संबोध्यंग । [६] समाधि-संबोध्यंग ॰। [७] उपेक्षा-संबोध्यंगकी भावना करेंगे ।

१० "भिक्षुओ ! और भी सात अ-परिहाणीय-धर्मोंको कहता हूँ। . । [१] भिक्षुओ ! जबतक भिक्षु अनित्य-सज्ञाकी भावना करेंगे · [२] · अनात्मसज्ञा·· । [३] · भोगोंमें अशुभसज्ञा · । [४] आदीनव (=दुष्परिणाम)-सज्ञा · । [५] प्रहाण-(=त्याग) सज्ञा · । [६] विराग-सज्ञा ··। [७] · निरोध-सज्ञा · । ।

११. "भिक्षुओ ! छ. अ-परिहाणीय-धर्मोंको कहता हूँ। । [१] जब तक भिक्षु-सब्रह्मचारियों (=गुरुभाइयों) में गुप्त और प्रकट, मैत्रीपूर्ण कायिक कर्म रखेंगे · । [२] · मैत्रीपूर्ण वाचिक-कर्म रखेंगे · ।

[३] मैत्रीपूर्ण मानसिक कर्म रखेंगे । [४] जब तक भिक्षु धार्मिक, धर्मसे प्राप्त जो लाभ हैं—यहाँ तक कि पात्रमें चुपड़ने मात्र भी—वैसे लाभों को (भी) शीलवान् ब्रह्मचारी भिक्षुओंसे बाँटकर भोग करने वाले होंगे । [५] जब तक भिक्षु, जो वह अखंड (=निर्दोष), अछिद्र, अकल्माष, भुजिस्स (=सेवनीय), विद्वानोंसे प्रशंसित, अनिन्दित समाधिकी ओर ले जानेवाले शील हैं, वैसे शीलोंसे शील-श्रामण्य युक्त हो ब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त भी प्रकट भी विहरेंगे । [६] जो वह आर्य (=उत्तम), नैर्याणिक (=पार करानेवाली), वैसा करनेवालेको अच्छी प्रकार दुःख क्षयकी ओर ले जानेवाली दृष्टि है, वैसी दृष्टिसे दृष्टि-श्रामण्य-युक्त हो, ब्रह्मचारियोंके साथ गुप्त भी, प्रकट भी विहरेंगे । भिक्षुओ ! जब तक यह छ अपरिहाणीय धर्म ० ।

१२. वहाँ राजगृहमें गृध्रकूट-पर्वतपर विहार करते हुए भगवान् बहुधा भिक्षुओंको यही धर्मकथा कहते थे—ऐसा शील है, ऐसी समाधि है, ऐसी प्रज्ञा है । शीलसे परिभावित समाधि महा फलवाली,

महानिसंसो । समाधिपरिभाविता पञ्ञा महप्फला महानिसंसा । पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति, सेय्यथिदं—कामासवा, भवासवा, दिट्ठासवा,

अम्बलट्ठिकायं

१३. अथ खो भगवा राजगहे यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'आयामानन्द ! येन अम्बलट्ठिका तेनुपसङ्कमिस्सामा'ति ।

'एवं भन्ते'ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि ।

१४. अथ खो भगवा महता भिक्खुसंघेन सद्धिं येन अम्बलट्ठिका तदवसरि । तत्र सुदं भगवा अम्बलट्ठिकायं विहरति राजागारके । तत्रपि सुदं भगवा अम्बलट्ठिकायं विहरन्तो राजागारके एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिकथं करोति—'इति सीलं, इति समाधि इति पञ्ञा । सीलपरिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो । समाधिपरिभाविता पञ्ञा महप्फला होति महानिसंसा । पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति । सेय्यथिदं—कामासवा भवासवा दिट्ठासवा अविज्जासवा'ति ।

१५. अथ खो भगवा अम्बलट्ठिकायं यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'आयामानन्द ! येन नाळन्दा तेनुपसङ्कमिस्सामा'ति ।

'एवं भन्ते'ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि ।

सारिपुत्तस्स सीहनादं

१६. अथ खो भगवा महता भिक्खुसंघेन सद्धिं येन नाळन्दा, तदवसरि । तत्र सुदं भगवा नाळन्दायं विहरति पावारिकम्ब-वने । अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि ।

महा आनृशंसवाली होती है। प्रज्ञासे परिभावित चित्त आस्रवों,—कामास्रव, भवास्रव, दृष्टि-आस्रव—से अच्छी तरह मुक्त होता है।

अम्बलट्ठिकामें

१३ तब भगवान्‌ने राजगृहमें इच्छानुसार विहारकर आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"चलो आनन्द! जहाँ अम्बलट्ठिका[1] है, वहाँ चलें।" "अच्छा, भन्ते!"

१४ तब भगवान् महान् भिक्षु संघके साथ जहाँ अम्बलट्ठिका थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् अम्बलट्ठिकामें राजगारकमें विहार करते थे। वहाँ राजागारकमें भी भगवान् भिक्षुओंको बहुधा यही धर्म कथा कहते थे—।

१५ भगवान्‌ने अम्बलट्ठिकामें यथेच्छ विहारकर आयुष्मान् आनन्द-को आमन्त्रित किया—

"चलो आनन्द! जहाँ नालन्दा[2] है, वहाँ चलें।" "अच्छा, भन्ते!".

सारिपुत्र का सिंहनाद

१६ तब भगवान् वहाँसे महाभिक्षु-संघके साथ जहाँ नालन्दा थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् नालन्दा में प्रावारिक-आम्रवनमें विहार करते थे।

---

१ सम्भवत वर्तमान् सिलाव, जिला पटना (बिहार)

२ नालन्दा, जिला पटना (बिहार)

उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि।
निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं
पसन्नो अहं भन्ते ! भगवति न चाहु न च भविस्सति न
चेतरहि विज्जति अञ्ञो समणो वा ब्राह्मणो वा भगवता भिय्यो-
भिञ्ञतरो यदिदं सम्बोधियन्ति।

'उळारा खो ते अयं सारिपुत्त ! आसभीवाचा भासिता, एकंसो गहितो सीहनादो नदितो–'एवं पसन्नो अहं भन्ते ! भगवति न चाहु न च भविस्सति न चेतरहि विज्जति, अञ्ञो समणो वा ब्राह्मणो वा भगवता भिय्योभिञ्ञतरो यदिदं सम्बोधियन्ति।

'किन्नु सारिपुत्त ! ये ते अहेसुं अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा सब्बे ते भगवन्तो चेतसा चेतो परिच्च विदिता, एवंसीला ते भगवन्तो अहेसुं इतिपि एवंधम्मा एवंपञ्ञा, एवंविहारी एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं इतिपी'ति ?'

'नो हेतं भन्ते !

'किं पन सारिपुत्त ! ये ते भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा सब्बे ते भगवन्तो चेतसा चेतो परिच्च विदिता एवंसीला ते भगवन्तो भविस्सन्ति इतिपि, एवंधम्मा, एवंपञ्ञा एवंविहारी एवंविमुत्ता ते भगवन्तो भविस्सन्ति इतिपी'ति ?

'नो हेतं भन्ते !

'किं पन सारिपुत्त ! अहं एतरहि अरहं सम्मासम्बुद्धो चेतसा चेतो परिच्च विदितो एवंसीलो भगवा इतिपि, एवंधम्मो एवंपञ्ञो एवंविहारी एवं विमुत्तो भगवा इतिपी'ति ?'

'नो हेतं भन्ते !

'एत्थ हि ते सारिपुत्त ! अतीतानागतपच्चुप्पन्नेसु अरहन्तेसु सम्मासम्बुद्धेसु चेतसा चेतोपरियञाणं नत्थि, अथ किञ्चरहि

तब आयुष्मान् सारिपुत्र[1] जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते! मेरा ऐसा विश्वास है—'सम्बोधि (=परमज्ञान) में भगवान् से बढकर (=भूयस्तर) कोई दूसरा श्रमण ब्राह्मण न हुआ, न होगा, न इस समय है'।"

"सारिपुत्र! तूने यह बहुत उदार (=बडी) =आर्षभी वाणी कही। बिल्कुल सिंहनाद किया—'मेरा ऐसा ।'

सारिपुत्र! जो वह अतीकालमें अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध हुए, क्या (तूने) उन सब भगवानोंको (अपने) चित्तसे जान लिया, कि वह भगवान् ऐसे शीलवाले, ऐसी प्रज्ञावाले, ऐसे विहारवाले, ऐसी विमुक्ति-वाले थे?"

"नहीं, भन्ते!"

"सारिपुत्र! जो वह भविष्यकालमें अर्हत्-सम्यक्-सबुद्ध होंगे, क्या उन सब भगवानोंको चित्तसे जान लिया ?"

"नहीं, भन्ते!"

"सारिपुत्र! इस समय मैं अर्हत्-सम्यक् सबुद्ध हूँ, क्या चित्तसे जान लिया, (कि मैं) ऐसी प्रज्ञावाला हूँ?"

"नहीं, भन्ते!"

"(जब) सारिपुत्र! तेरा अतीत, अनागत (= भविष्य), प्रत्युत्पन्न (= वर्तमान) अर्हत् सम्यक् सबुद्धोंके विषयमें चेत परिज्ञान (पर-चित्तज्ञान)

---

१ यह अंश यहाँ नहीं होना चाहिए। इसके लिए देखिए परिशिष्ट १ में १३ और २९ संख्या के शब्दोंकी व्याख्या।

नहीं है, तो सारिपुत्र ! तूने क्यों यह बहुत उदार—आर्षभी वाणी कही ?"

१७ "भन्ते ! अतीत-आनगत-प्रत्युत्पन्न अर्हत् सम्यक् सबुद्धोंमें मुझे चेतःपरिज्ञान नहीं, किन्तु (सबकी) धर्म-अन्वय (=धर्म-समानता) विदित है जैसे कि भन्ते ! राजा का सीमान्त-नगर दृढ नींववाला, दृढ प्राकारवाला, एक दारवाजावाला हो । वहाँ अज्ञातों (=अपरिचितों) को निवारण करनेवाला, ज्ञातों (=परिचितों) को प्रवेश कराने वला पंडित, व्यक्त, मेधावी द्वारपाल हो । वहाँ नगरकी चारों ओर, अनुपर्याय (=क्रमशः) मार्गपर घूमते हुए (मनुष्य), प्राकारमें अन्तत. बिल्लीके निकल्ने भरकी भी सधि (=विवर) न पाये । उसको ऐसा हो—'जो कोई बड़े बड़े प्राणी इस नगर में प्रवेश करते हैं, सभी इसी द्वारसे । ऐसे ही भन्ते ! मैंने धर्म-अन्वय जान लिया—'जो वह अतीतकालमें अर्हत्-सम्यक्-सबुद्ध हुए, वह सभी भगवान् भी चित्तके उपक्लेश (=मल) प्रज्ञाको दुर्बल करनेवाले, पाँचों नीवरणोंको छोड, चारों स्मृति-प्रस्थानोंमें चित्तको सु-प्रतिष्ठितकर, सात बोध्यगोंकी यथार्थसे भावना कर, सर्वश्रेष्ठ (=अनुत्तर) सम्यक् सबोधि (=परमज्ञान) का साक्षात्कार किये थे और भन्ते ! अनागतमें भी जो अर्हत्-सम्यक् सबुद्ध होंगे वह सभी भगवान् । भन्ते ! इस समय भगवान् अर्हत्-सम्यक् सबुद्धने भी चित्तके उपक्लेश ।"

१८. वहाँ नालन्दामें प्रावारिक-आम्रवनमें विहार करते, भगवान् भिक्षुओंको बहुधा यही कहते थे · ।

शीलके गुण

१९ तब भगवान्ने नालन्दामें इच्छानुसार विहारकर, आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"चलो, आनन्द ! जहाँ पाटलि-ग्राम[1] है, वहाँ चलें ।"

"अच्छा, भन्ते !"

तब भगवान् महान् भिक्षुसघके साथ, जहाँ पाटलि ग्राम था, वहाँ गये।

२० पाटलिग्रामके उपासकोंने सुना कि भगवान् पाटलिग्राम आये हैं। तब उपासक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे · उपासकोंने भगवान्-से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान् हमारे आवसथागार (= अतिथिशाला) को स्वीकार करें ।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया ।

२१ तब · उपासक भगवान्की स्वीकृति जान आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणा कर जहाँ आवसथागार था, वहाँ गये। जाकर आवसथागारमें चारों ओर बिछौना बिछाकर, आसन लगाकर, जलके बर्तन स्थापितकर तेलके दीपक जला, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खडे हो गये। एक ओर खड़े हो पाटलिग्रामके उपासकोंने भगवान्से यह कहा—'भन्ते ! आवसथागारमें चारों ओर बिछौना बिछा दिया , अब जिसका भन्ते ! भगवान् काल समझें ।"

---

१ पटनाका प्राचीन नाम ।

२२ तब भगवान् सायंकालको पहनकर पात्र-चीवर ले, भिक्षु संघ के साथ आवसथागारमें प्रविष्ट हो बीचके खम्भेके पास पूर्वाभिमुख बैठे। भिक्षुसंघ भी पैर पखार आवसथागारमे प्रवेशकर, पूर्वकी ओर मुँहकर भीतके सहारे भगवान्को आगेकर बैठा। पाटलिग्रामके उपासक भी पैर पखार आवसथागारमें प्रवेशकर पच्छिमकी ओर मुँहकर पूर्वकी भीतके सहारे भगवान्को सामने करके बैठे।

२३ तब भगवान्ने उपासकोंको आमन्त्रित किया—

"गृहपतियो! दुराचारके कारण दुःशील (=दुराचारी) के लिए पाँच दुष्परिणाम हैं। कौनसे पाँच? गृहपतियो! [१] दुराचारी आलस्य करके बहुतसे अपने भोगोंको खो देता है, दुराचारीका दुराचारके कारण यह पहला दुष्परिणाम है। [२] और फिर "दुराचारीकी निन्दा होती है"। [३] दुराचारी, आचारभ्रष्ट (पुरुष) क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति या श्रमण जिस किसी सभामें जाता है प्रतिभा-रहित, मूक होकर ही जाता है। [४] "मूढ रह मृत्युको प्राप्त होता है"। [५] और फिर गृहपतियो! दुराचारी आचारभ्रष्ट काया छोड मरनेके बाद अपाय = दुर्गति = पतन=नरकमें

उत्पन्न होता है। दुराचारीके दुराचारके कारण यह पाँचवाँ दुष्परिणाम है ।

२४ "गृहपतियो ! सदाचारीके लिए सदाचारके कारण पाँच सुपरिणाम हैं। कौनसे पाँच ? गृहपतियो ! [१] सदाचारी अप्रमाद (=गफलत न करना) होकर बडी भोगराशिको (इसी जन्ममें) प्राप्त करता है। सदाचारीको सदाचारके कारण यह पहला सुपरिणाम है। [२] सदाचारीका मगलयश फैलता है । [३] जिस किसी सभामें जाता है मूक न हो विशारद बनकर जाता है । [४] "मूढ न हो मृत्युको प्राप्त होता है ।[५] और फिर गृहपतियो! सदाचारी सदाचारके कारण काया छोड मरनेके बाद सुगति=स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। सदाचारीके लिए सदाचारके कारण यह पाँचवाँ सुपरिणाम है।

गृहपतियो ! सदाचारीके लिए सदाचारके कारण यह पाँच सुपरिणाम हैं।"

२५ तब भगवान्‌ने बहुत राततक उपासकोंको धार्मिक कथासे सदर्शित समुत्तेजित कर उद्योजित किया—"गृहपतियो ! रात क्षीण हो गई, जिसका तुम समय समझते हो (वैसा करो)।"

"अच्छा भन्ते !" पाटलिग्राम वासी उपासक आसनसे उठकर भगवान्‌को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर चले गये। तब पाटलिग्रामके उपासकोंके चले जानेके थोडी देर बाद भगवान् शून्य-आगारमें चले गये।

पाटलिग्राममें नगर-निर्माण

२६ उस समय सुनीध (=सुनीथ) और वर्षकार मगधके महामात्य पाटलिग्राममें वज्जियोंको रोकनेके लिए नगर बसा रहे थे। जिस स्थानमे महाप्रभावशाली देवताओंने वास ग्रहण किया था, उस स्थानमें महाप्रभावशाली राजाओं और राजमहामन्त्रियोंके चित्तमें घर बनानेको होता था। जिस स्थानमें मध्यम श्रेणीके देवताओंने वास ग्रहण किया था, उस स्थानमें मध्यम श्रेणीके राजाओं और राजमहामन्त्रियोंके चित्तमें घर बनानेको होता था। जिस स्थानमें नीच देवताओंने वास ग्रहण किया था, उस स्थानमें नीच राजाओ और राजमहामन्त्रियोंके चित्तमें घर बनानेको होता था।

२७ भगवान्‌ने रातके प्रत्यूष-समय (=भिनसार) को उठकर आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"आनन्द ! पाटलिग्राममें कौन नगर बना रहा है ?"

"भन्ते ! सुनीध और वर्षकार मगध-महामात्य, वज्जियोंको रोकनेके लिए नगर बसा रहे हैं।"

२८ "आनन्द ! जैसे त्रायस्त्रिंश[1] देवताओंके साथ सलाह करके मगध[2]के महामात्य सुनीध और वर्षकार वज्जियोंके रोकनेके लिए नगर बना रहे हैं। आनन्द ! मैंने अमानुष दिव्य नेत्रसे देखा—अनेक सहस्र देवता यहाँ पाटलिग्राममें वास्तु (=घर, वास) ग्रहण कर रहे हैं। जिस प्रदेशमे

---

१ इन्द्रलोक।

२ वर्तमान् विहार राज्य।

महाशक्तिशाली देवता वास ग्रहण कर रहे हैं, वहाँ महा शक्तिशाली राजाओं और राजमहामात्योंके चित्त, घर बनानेको लगते हैं। जिस प्रदेशमे मध्यम देवता वास ग्रहण कर रहे हैं, वहाँ मध्यम राजाओं और राज महामात्योंके चित्त घर बनानेको लगते हैं। जिस प्रदेशमें नीच देवता' ', वहाँ नीच राजाओं । आनन्द! जितने (भी) आर्य-आयतन (=आर्योंके निवास) हैं, जितने भी वणिक् पथ (=व्यापार मार्ग) हैं, (उनमें) यह पाटलिपुत्र, पुट-भेदन (=मालकी गाँठ जहाँ तोडी जाय) अग्र (=प्रधान) नगर होगा। पाटलिपुत्रके तीन अन्तराय (=शत्रु) होंगे—आग, पानी और आपसकी फूट।"

२९ तब मगध महामात्य सुनीध और वर्षकार जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्‌के साथ समोदनकर एक ओर खड़े हुए भगवान्‌से बोले—

"भिक्षु सघ के साथ आप गौतम! हमारा आजका भात स्वीकार करें।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

३० तब सुनीध और वर्षकार भगवान्‌की स्वीकृति जान, जहाँ उनका पडाव था वहाँ गये। जाकर अपने पडावमें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, (उन्होंने) भगवान्‌को समयकी सूचना दी ।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहनकर, पात्र-चीवर ले भिक्षु-सघके साथ जहाँ मगध महामात्य सुनीध और वर्षकारका पडाव था, वहाँ गये, जाकर बिछे आसन पर बैठे। तब सुनीध और वर्षकारने बुद्धप्रमुख भिक्षु-सघ

को अपने हाथसे उत्तम खाद्य भोजसे सतर्पित, सम्प्रवारित किया। तब
सुनीध और वर्षकार, भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेने पर, दूसरा
नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए मगध-महामात्य
सुनीध और वर्षकारको भगवान्‌ने इन गाथाओंसे (दानका) अनुमोदन
किया—

३१. "जिस प्रदेश म पण्डितपुरुष, शीलवान्, सयमी, ब्रह्मचारियो
को भोजन कराकर वास करता है ॥१॥

'वहाँ जो देवता है, उन्हे दक्षिणा (=दान) देनी चाहिये। वह
देवता पूजित हो पूजा करते है, मानित हो मानते है ॥२॥

'तब वह औरस पुत्रकी भाँति उसपर अनुकम्पा करते है। देवताओंमे
अनुकम्पित हो पुरुष सदा मगल देखता है ॥३॥

३२ तब भगवान् सुनीध और वर्षकारको इन गाथाओंसे
अनुमोदनकर, आसनसे उठकर चले गये।

उस समय सुनीध और वर्षकार भगवान्‌के पीछे-पीछे चल रहे थे—
'श्रमण गौतम आज जिस द्वारसे निकलेंगे, वह गौतम-द्वार होगा। जिस
तीर्थ (=घाट) से गगा नदी पार होंगे, वह गौतम तीर्थ होगा। तब
भगवान् जिस द्वारसे निकले, वह गौतम द्वार हुआ।

३३ तब भगवान् जहाँ गगा-नदी है, वहाँ गये। उस समय गगा
करारों बराबर भरी, करारपर बैठे कौवेके पीने योग्य थी। कोई आदमी
नाव खोजते थे, कोई बेडा खोजते थे, कोई कूला बाँधते थे। तब
भगवान्, जैसे कि बलवान् पुरुष समेटी बाँहको (सहज ही) फैला दे,
फैलाई बाँहको समेट ले, वैसे ही भिक्षु-सघके साथ गगा नदीके इस पारसे

नदिया ओरिमतीरे अन्तरहितो पारिमतीरे भिक्खुसंघेन। अद्दस खो भगवा ते मनुस्से अप्पेकच्चे परियेसन्ते अप्पेकच्चे उळुम्पं परियेसन्ते अप्पेकच्चे बन्धन्ते पारापारं गन्तुकामे। अथ खो भगवा एतमत्थं तायं वेलायं इमं उदानं उदानेसि—

> १४ ये तरन्ति अण्णवं सरं सेतुं कत्वान विसज्ज पल्ललानि
> कुल्लं हि जनो पबन्धति, तिण्णा मेधाविनो जना'ति

पठमभाणवारं निट्ठितं।

अन्तर्धान हो परले तीरपर जा खड़े हुए। भगवान्‌ने उन मनुष्योंको देखा, कोई-कोई नाव खोज रहे थे । तब भगवान्‌ने इसी अर्थको जानकर, उस समय यह उदान कहा—

३४. "(पण्डित) छोटे जलाशयों को छोड समुद्र और नदियोंको सेतुसे तरते हैं।

(जब तक) लोग कूला बाँधने रहते हैं, (तब तक) मेधावी जन तर गये रहते हैं" ॥

प्रथम भाणवार समाप्त ।

[२]

चत्तारि अरियसच्चानि

१५. अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"आयामानन्द ! येन कोटिगामो, तेनुपसङ्कमिस्सामा'ति" । 'एवं भन्ते' ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि ।

१६. अथ खो भगवा महता भिक्खुसंघेन सद्धिं येन कोटिगामो तदवसरि । तत्र सुदं भगवा कोटिगामे विहरति । तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"चतुन्नं भिक्खवे ! अरियसच्चानं अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च । कतमेसं चतुन्नं ?

[१] दुक्खस्स भिक्खवे ! अरियसच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ।

[२] दुक्खसमुदयस्स भिक्खवे ! अरियसच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ।

[३] दुक्खनिरोधस्स भिक्खवे ! अरियसच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ।

[४] दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय भिक्खवे ! अरियसच्चस्स अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च ।

तयिदं भिक्खवे ! दुक्खं अरियसच्चं अनुबुद्धं पटिविद्धं ।

[२]

चार आर्यसत्य

२५. तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"आओ आनन्द ! जहाँ कोटिग्राम है, वहाँ चले।" "अच्छा भन्ते!" कहकर आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌को उत्तर दिया।

२६. तब भगवान् महान् भिक्षु-संघके साथ जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् कोटिग्राममें विहार करते थे। भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ ! चार आर्य सत्योंके अनुबोध=प्रतिवेध न होनेसे इस प्रकार दीर्घकालसे यह दौड़ना, चक्कर करना (=आवागमन) 'मेरा और तुम्हारा' हो रहा है। कौनसे चार ?

भिक्षुओ ! [१] दुःख आर्य सत्यके अनुबोध-प्रतिवेध न होनेसे ०।

[२] दुःख-समुदय ०।

[३] दुःख-निरोध ०।

[४] दुःख-निरोध गामिनी प्रतिपद् ०।

भिक्षुओ ! सो इस दुःख आर्य-सत्यको अनुबोध, प्रतिवेध किया ,
(तो) भव-तृष्णा उच्छिन्न हो गई, भवनेत्री (=तृष्णा) क्षीण हो गई।"

३७ यह कहकर सुगत (=बुद्ध) ने और यह भी कहा—

"चारों आर्यसत्योंको ठीकसे न देखनेसे,
उन उन योनियोंमें दीर्घकालसे आवागमन होता रहा।
अब ये देख लिये गये हैं, भवनेत्री नष्ट हो गयी है,
दु:खकी जड कट गयी है, और फिर अब आवागमन नहीं है।

३८. वहॉ कोटिग्राममें विहार करते भी भगवान्, भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म-कथा कहते थे—यह शील ˚ ।

धर्मादर्श

३९ तब भगवान्‌ने कोटिग्राममें इच्छानुसार विहारकर, आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"आओ आनन्द ! जहॉ नातिका है, वहॉ चले ," अच्छा, भन्ते!"

तब भगवान् महान् भिक्षु सघ के साथ जहॉ नातिका है, वहाँ गये। वहाँ नातिकामे भगवान् गिंजकावसथमें विहार करते थे।

४० तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! साल्ह भिक्षु नातिकामें मर गया, उसकी क्या गति, क्या परलोक हुआ ? नन्दा भिक्षुणी सुदत्त उपासक सुजाता उपासिका ककुध उपासक कालिंग उपासक निकट उपासक कटिस्सह उपासक तुट्ठ उपासक सन्तुट्ठ उपासक भद्द उपासक भन्ते ! सुभद्द उपासक नातिकामें मर गया, उसकी क्या गति, क्या परलोक हुआ ?"

४१ "आनन्द ! साल्ह भिक्षु इसी जन्ममें आस्रवों (=चित्तमलों) के क्षयसे आस्रव रहित चित्तकी मुक्ति प्रज्ञा-विमुक्ति (=ज्ञानद्वारा मुक्ति) को स्वय जानकार साक्षात्कर, प्राप्तकर विहार कर रहा था। आनन्द ! नन्दा भिक्षुणी पाँच अवरभागीय सयोजनोंके क्षयसे देवता हो वहाँसे न लौटनेवाली अनागामी हो वहीं (देवलोकमें) निर्वाण प्राप्त करेगी। सुदत्त उपासक आनन्द ! तीन सयोजनोंके क्षीण होनेसे, राग-द्वेष-मोहके दुर्बल होनेसे सकृदागामी हुआ, एक ही वार इस लोकमें और आकर दु खका अन्त करेगा। सुजाता उपासिका तीन सयोजनोंके क्षयसे न-गिरनेवाले

बोधिके रास्ते पर आरुढ हो स्रोतापन्न हुई। ककुध अनागामी"। कालिंग । निकट । कटिस्सह । तुट्ठ "। सतुट्ठ । भद्द "। सुभद्द उपासक आनन्द ! पॉच अवरभागीय सयोजनोके क्षयसे देवता हो वहॉसे न लौटने वाला (=अनागामी) हो वहीं (देवलोकमें) निर्वाण प्राप्त करनेवाला है। आनन्द ! नातिकामें पचाससे अधिक उपासक मरे हैं, जो सभी " अनागामी " हैं। " नब्बेसे अधिक उपासक सकृदागामी पॉचसौसे अधिक उपासक" स्रोतापन्न ।

४२ आनन्द ! यह ठीक नहीं, कि जो कोई मनुष्य मरे, उसके मरने पर तथागतके पास आकर इस बातको पूछा जाय। आनन्द ! यह तथागत-को कष्ट देना है। इसलिये आनन्द ! धर्म आदर्श नामक धर्म-पर्याय (=उपदेश)का उपदेश देता हूँ, जिससे युक्त होनेपर आर्यश्रावक स्वय अपना व्याकरण (=भविष्यकथन) कर सकेगा—'मुझे नरक नहीं, पशु-योनि नहीं, प्रेत्य-योनि नहीं, अपाय, दुर्गति, विनिपात नहीं। मैं न गिरनेवाला, बोधिके रास्तेपर स्रोतापन्न हूँ।"

४३ "आनन्द ! क्या है वह धर्मादर्श धर्मपर्याय ?

४४ [१] आनन्द ! जो आर्यश्रावक बुद्धमें अत्यन्त श्रद्धायुक्त होता

है—'वह भगवान् अर्हत्, सम्यक्-सम्बुद्ध (=परमज्ञानी), विद्या आचरण-युक्त, सुगत, लोकविद्, पुरुषोंके दमन करनेमें अनुपम चाबुक सवार, देवताओं और मनुष्योंके उपदेशक बुद्ध (=ज्ञानी) भगवान है'।

[२] 'धर्ममें अत्यन्त श्रद्धायुक्त होता है—'भगवान्का धर्म स्वाख्यात (=सुन्दर रीतिसे कहा गया) है, वह सांदृष्टिक (=इसी शरीरमें फल देनेवाला), अकालिक (=कालान्तरमें नहीं सद्य फलप्रद), एहिपस्सिक (=यहीं दिखाई देनेवाला), ओपनयिक (=निर्वाणके पास ले जानेवाला), विज्ञ (पुरुषों) को अपने भीतर (ही) विदित होनेवाला है।'

[३] 'संघमें अत्यन्त श्रद्धायुक्त होता है—'भगवान का श्रावक (=शिष्य) संघ सुमार्गारूढ है, भगवान्का श्रावक संघ सरल मार्गपर आरूढ है, न्याय मार्गपर आरूढ है, ठीक मार्ग पर आरूढ है, यह चार पुरुष-युगल (स्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी और अर्हत्) और आठ-पुरुष=पुद्गल हैं। यही भगवान् का श्रावक-संघ है, (जो कि) आह्वान करने योग्य है, पाहुना बनाने योग्य है, दान देने योग्य है, हाथ जोड़ने योग्य है, और लोक के लिए पुण्य (बोने) का क्षेत्र है।', [४] और अखंडित, निर्दोष, निष्कल्मष, सेवनीय, विज्ञ प्रशंसित, आर्य (= उत्तम) कान्त, शीलों (= सदाचारों) से युक्त होता है। आनन्द! यह धर्मादर्श धर्मपर्याय है ।"

४५. वहाँ नातिका में विहार करते भी भगवान् भिक्षुओं को यही धर्मकथा ।

४६ तब भगवान् ने नातिका में इच्छानुसार विहारकर आयुष्मान आनन्दको आमन्त्रित किया—"आओ आनन्द! जहाँ वैशाली है, वहाँ चलें।"

"अच्छा, भन्ते!" ।

अम्बपाली गणिका का भोजन

४७ तब भगवान् महाभिक्षु-संघ के साथ जहाँ वैशाली थी, वहाँ गये। वहाँ वैशाली में अम्बपाली वन में विहार करते थे।

वहाँ भगवान ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ! स्मृति और सप्रजन्य के साथ विहार करो, यही हमारा तुम्हें अनुशासन है। कैसे· भिक्षु स्मृतिमान होता है? जब भिक्षुओ! भिक्षु कायामें कायानुपश्यी (= शरीरको उसकी बनावट के अनुसार केश-नख-मलमूत्र आदि के रूप में देखना) हो, उद्योगशील, अनुभवज्ञान (=सप्रजन्य) युक्त, स्मृतिमान्, लोक के प्रति लोभ और द्वेष हटाकर विहरता है। वेदनाओं (=सुख, दुःख आदि) में वेदनानुपश्यी हो · । चित्त में चित्तानुपश्यी हो । धर्मों में धर्मानुपश्यी हो । इस प्रकार भिक्षु स्मृतिमान् होता है।

४८ कैसे ··सप्रज्ञ होता है? जब भिक्षु जानते हुये गमन-आगमन करता है। जानते हुये अवलोकन-विलोकन करता है। सिकोड़ना-फैलाना । ·संघाटी पात्र-चीवर को धारण करता है। खाना, पान, खादन, आस्वादन करता है। · पाखाना, पेशाब करता है। चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते, चुप रहते जानकर करने वाला होता है। इस प्रकार भिक्षुओ! भिक्षु सप्रजानकारी होता है। इस प्रकार · सप्रज्ञ होता है । भिक्षुओ! भिक्षु को स्मृति और सप्रजन्ययुक्त विहरना चाहिये, यही हमारा तुम्हें अनुशासन है।"

४९ अम्बपाली गणिका ने सुना—भगवान् वैशाली में आये हैं और वैशाली में मेरे आम्रवन में विहार करते हैं। तब अम्बपाली गणिका

सुन्दर सुन्दर (=भद्र) यानों को जुडवाकर, एक सुन्दर यान पर चढ सुन्दर यानो के साथ वैशाली से निकली, और जहाँ उसका आराम था, वहाँ चली। जितनी यान की भूमि थी, उतनी यान से जाकर, यान से उतर पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिका को भगवान् ने धार्मिक कथा से सदर्शित समुत्तेजित किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान् से यह बोली—

"भन्ते! भिक्षु सघ के साथ भगवान् मेरा कल का भोजन स्वीकार करें।"

भगवान् ने मौन से स्वीकार किया।

तब अम्बपाली गणिका भगवान् की स्वीकृति जान, आसन से उठ भगवान् को अभिवादनकर प्रदक्षिणा कर चली गई।

५० वैशाली के लिच्छवियों ने सुना—'भगवान् वैशाली में आये हैं'। तब वह लिच्छवी 'सुन्दर यानों पर आरूढ हो' वैशाली से निकले। उनमें कोई कोई लिच्छवी नीले, नील-वर्ण, नील-वस्त्र, नील-अलकारवाले थे। कोई कोई लिच्छवी पीले थे।··लोहित (=लाल)··।··अवदात (=सफेद)। अम्बपाली गणिका ने तरुण तरुण लिच्छवियों के धुरों से धुरा, चक्कों से चक्का, जूये से जुआ टकरा दिया। उन लिच्छवियों ने अम्बपाली गणिका से कहा—

"जे! अम्बपाली! क्यों तरुण तरुण लिच्छवियोंके धुरों से धुरा टकराती है? ·"

सुन्दर सुन्दर (=भद्र) यानों को जुडवाकर, एक सुन्दर यान पर चढ सुन्दर यानों के साथ वैशाली से निकली, और जहाँ उसका आराम था, वहाँ चली। जितनी यान की भूमि थी, उतनी यान से जाकर, यान से उतर पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिका को भगवान् ने धार्मिक कथा से सदर्शित समुत्तेजित किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान् से यह बोली—

"भन्ते ! भिक्षु सघ के साथ भगवान् मेरा कल का भोजन स्वीकार करें।"

भगवान् ने मौन से स्वीकार किया।

तब अम्बपाली गणिका भगवान् की स्वीकृति जान, आसन से उठ भगवान् को अभिवादनकर प्रदक्षिणा कर चली गई।

५० वैशाली के लिच्छवियों ने सुना—'भगवान् वैशाली में आये हैं ··'। तब वह लिच्छवी 'सुन्दर यानों पर आरूढ हो 'वैशाली से निकले। उनमें कोई कोई लिच्छवी नीले, नील-वर्ण, नील-वस्त्र, नील-अलकारवाले थे। कोई कोई लिच्छवी पीले थे। 'लोहित (=लाल) ··।·· अवदात (=सफेद) । अम्बपाली गणिका ने तरुण तरुण लिच्छवियों के धुरों से धुरा, चक्कों से चक्का, जूये से जुआ टकरा दिया। उन लिच्छवियों ने अम्बपाली गणिका से कहा—

"जे ! अम्बपाली ! क्यों तरुण तरुण लिच्छवियोंके धुरों से धुरा टकराती है ? "

"आर्यपुत्रो ! क्योकि मैंने भिक्षु-सघके साथ कलके भोजनके लिये भगवान् को निमन्त्रित किया है ।"

"जे ! अम्बपाली ! सौ हजार (कार्षापण)से भी इस भोजनको (हमें करनेके लिये) दे दे ।"

"आर्यपुत्रो ! यदि वैशाली जनपद भी दो, तो भी इस महान् भातको न दूँगी ।"

तब उन लिच्छवियोंने अगुलियाँ फोड़ीं—

"अरे ! हमें अम्बिकाने जीत लिया, अरे ! हमें अम्बिकाने वचित कर दिया ।"

५१. तब वह लिच्छवी जहाँ अम्बपाली वन था, वहाँ गये । भगवान्ने दूरसे ही लिच्छवियोंको आते देखा । देखकर भिक्षुओंको आमन्त्रित किया—

"अवलोकन करो भिक्षुओ ! लिच्छवियोंकी परिपद्को ! अवलोकन करो भिक्षुओ ! लिच्छवियोंकी परिपद्को । भिक्षुओ ! लिच्छवि-परिषद्को त्रायस्त्रिश (देव) परिपद् समझो ।"

५२ तब वह लिच्छवी ··रथसे उतरकर पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ · जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे लिच्छवियोंको भगवान्ने धार्मिक-कथासे· समुत्तेजित किया । तब वह लिच्छवी भगवान्से बोले—

"भन्ते ! भिक्षु-सघके साथ भगवान् हमारा कलका भोजन स्वीकार करें ।"

"लिच्छवियो ! कल तो, मैंने अम्बपाली-गणिका का भोजन स्वीकार कर लिया है ।"

तब उन लिच्छवियोंने अँगुलियाँ फोड़ीं—

"अरे ! हमें अम्बिकाने जीत लिया । अरे ! हमे अम्बिकाने वचित कर दिया ।"

अथ खो ते लिच्छवी भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा मोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु।

५६. अथ खो अम्बपाली गणिका तस्सा सके आरामे पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि—"कालो भन्ते! निट्ठितं भत्तन्ति!"

अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सद्धिं भिक्खुसंघेन येन अम्बपालिया गणिकाय निवेसनं, तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो अम्बपाली गणिका बुद्धपमुखं भिक्खुसंघं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो अम्बपाली गणिका भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्ना खो अम्बपाली गणिका भगवन्तं एतदवोच—"इमाहं भन्ते! आरामं बुद्धपमुखस्स भिक्खुसंघस्स दम्मी'ति।" पटिग्गहेसि भगवा आरामं।

अथ खो भगवा अम्बपालिं गणिकं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

वेळुवगामे वस्सावासो

५७. तत्र सुदं भगवा वेसालियं विहरन्तो अम्बपालिवने एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मि-कथं करोति 'इति सीलं, इति समाधि इति पञ्ञा। सीलपरिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो। समाधिपरिभाविता पञ्ञा महप्फला होति महानिसंसा। पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति। सेय्यथिदं—कामासवा भवासवा, दिट्ठासवा, अविज्जासवा'ति।

तब वह लिच्छवी भगवान्‌के भाषणको अभिनन्दितकर अनुमोदितकर, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चले गये।

५३ अम्बपाली गणिकाने उस रातके बीतनेपर, अपने आराममें उत्तम खाद्य-भोज्य तैयारकर, भगवान्‌को समय सूचित किया।

भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र-चीवर ले भिक्षु संघके साथ जहाँ अम्बपालीका परोसनेका स्थान था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। तब अम्बपाली गणिकाने बुद्ध प्रमुख भिक्षु-संघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोजन द्वारा संतर्पित, संप्रवारित किया। तब अम्बपाली गणिका भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ खींच लेनेपर, एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी अम्बपाली गणिका भगवान्‌से बोली—"भन्ते! मैं इस आरामको बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघको देती हूँ।"

भगवान्‌ने आरामको स्वीकार किया। तब भगवान् अम्बपाली . को धार्मिक कथासे समुत्तेजित कर, आसनसे उठकर चले गये।

वेलुवग्राम में वर्षावास

५४ वहाँ वैशालीमें विहार करते भी भगवान् भिक्षुओंको बहुत करके यही धर्म कथा कहते थे।

५५. अथ खो भगवा अम्बपालिवने यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'आयामानन्द ! येन वेळुवगामको तेनुपसङ्कमिस्सामा'ति ।

'एवं भन्ते'ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि । अथ खो भगवा महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन वेळुवगामको, तदवसरि । तत्र सुदं भगवा वेळुवगामके विहरति । तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"एथ तुम्हे भिक्खवे ! समन्ता वेसालिं यथामित्तं यथासन्दिट्ठं यथासम्भत्तं वस्सं उपेथ । अहं पन इधेव वेळुवगामके वस्सं उपगच्छामी'ति ।"

'एवं भन्ते'ति खो ते भिक्खू भगवतो पटिस्सुत्वा समन्ता वेसालिं यथामित्तं यथासन्दिट्ठं यथासम्भत्तं वस्सं उपगच्छिंसु । भगवा पन तत्थेव वेळुवगामके वस्सं उपगच्छि ।

खरो आबाधो

५६. अथ खो भगवतो वस्सूपगतस्स खरो आबाधो उप्पज्जि बाळ्हा वेदना वत्तन्ति मारणन्तिका । तत्र सुदं भगवा सतो सम्पजानो अधिवासेसि अविहञ्ञमानो । अथ खो भगवतो एतदहोसि 'न खो मे तं पतिरूपं योहं अनामन्तेत्वा उपट्ठाके अनपलोकेत्वा भिक्खुसङ्घं परिनिब्बायेय्यं । यन्नूनाहं इमं आबाधं विरियेन पटिपणामेत्वा जीवितसङ्खारं अधिट्ठाय विहरेय्यन्ति ।"

अथ खो भगवा तं आबाधं विरियेन पटिपणामेत्वा जीवितसङ्खारं अधिट्ठाय विहासि । अथ खो भगवतो सो आबाधो पटिप्पस्सम्भि ।

५७ अथ खो भगवा गिलाना वुट्ठितो अचिरवुट्ठितो गेलञ्ञा विहारा निक्खम्म विहारपच्छायायं पञ्ञत्ते आसने निसीदि ।

अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि ।

५५. ‘‘तब भगवान् महाभिक्षु-संघके साथ जहाँ वेलुव-ग्राम (=वेणुग्राम) था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् वेलुव-ग्राममें विहरते थे। भगवान् ने वहाँ भिक्षुओंको आमन्त्रित किया—

“आओ भिक्षुओ! तुम वैशालीके चारों ओर मित्र, परिचित ‘‘देख-कर वर्षावास करो। मैं यहीं वेलुव-ग्राममें वर्षावास करूँगा।” “अच्छा, भन्ते!” ‘भगवान् भी उसी वेलुव ग्राम में वर्षावास करने लगे।

सख्त बीमारी

५६. वर्षावासमें भगवान्‌को कडी बीमारी उत्पन्न हुई। भारी मरणान्तक पीडा होने लगी। उसे भगवान्‌ने स्मृति-सप्रजन्यके साथ बिना दुःख करते, स्वीकार (=सहन) किया। उस समय भगवान्‌को ऐसा हुआ—‘मेरे लिये यह उचित नहीं कि मैं उपस्थाकों (=सेवकों) को बिना जतलाये, भिक्षु-संघको बिना अवलोकन किये, परिनिर्वाण प्राप्त करूँ। क्यों न मैं इस आबाधा (=व्याधि) को हटाकर, जीवन-संस्कार (=प्राणशक्ति) को दृढतापूर्वक धारणकर, विहार करूँ। भगवान् उस व्याधिको वीर्य (=मनोबल) से हटाकर प्राण शक्तिको दृढतापूर्वक धारणकर, विहार करने लगे। तब भगवान्‌की वह बीमारी शान्त हो गई।

५७. भगवान् बीमारीसे उठ, रोगसे अभी अभी मुक्त हो, विहारसे (बाहर) निकलकर विहारकी छायामें बिछे आसनपर बैठे। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह कहा—

“भन्ते! भगवान्‌को सुखी देखा! भन्ते! मैंने भगवान्‌को अच्छा हुआ देखा! भन्ते! मेरा शरीर शून्य हो गया था। मुझे दिशायें भी सूझ न पडती थीं। भगवान्‌की बीमारीसे (मुझे) धर्म (=बात) भी नहीं

भान होते थे। भन्ते! कुछ आश्वासनमात्र रह गया था, कि भगवान् तबतक परिनिर्वाण नहीं प्राप्त करेंगे, जबतक भिक्षु-संघको कुछ कह न लेंगे।"

५८. "आनन्द! भिक्षु संघ मुझसे क्या चाहता है? आनन्द! मैंने न-अन्दर न-बाहर करके धर्म-उपदेश कर दिये। आनन्द! धर्मोंमें तथागतको (कोई) **आचार्य मुष्टि** (=रहस्य) नहीं है। आनन्द! जिसको ऐसा हो कि मैं भिक्षु संघको धारण करता हूँ, भिक्षु-संघ मेरे उद्देश्यसे है, वह जरूर आनन्द! भिक्षु संघके लिये कुछ कहे। आनन्द! तथागतको ऐसा नहीं है "आनन्द! तथागत भिक्षुसंघ के लिये क्या कहेंगे?

आनन्द! मैं इस समय जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वयःप्राप्त हूँ। अस्सी वर्षकी मेरी उम्र है। आनन्द! जैसे पुरानी गाडी (=शकट) बाँध-बूँधकर चलती है, ऐसे ही आनन्द! मानों तथागतका शरीर बाँध-बूँधकर चल रहा है। आनन्द! जिस समय तथागत सारे निमित्तों (=लिंगों) को मनमें न करनेसे, किन्हीं किन्हीं वेदनाओंके निरुद्ध होनेसे,

निमित्तरहित चित्तकी समाधि (=एकाग्रता) को प्राप्त हो विहरते है, उस समय 'तथागतका शरीर अच्छा होता है। इसलिये आनन्द! आत्मद्वीप, आत्मशरण, अनन्यशरण, धर्मद्वीप, धर्म-शरण, अनन्य-शरण होकर विहरो। कैसे आनन्द! भिक्षु आत्मशरण होकर विहरता है? आनन्द! भिक्षु काया में कायानुपश्यी ०।"

द्वितीय भाणवार समाप्त।

---

[३]

आयु-संस्कार का त्याग

५९ तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र-चीवर ले वैशालीमें भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए। वैशालीमें भिक्षाटन कर, भोजनोपरान्त ''आयुष्मान् आनन्दसे बोले—

"आनन्द! आसनी उठाओ, जहाँ **चापाल-चैत्य** है, वहाँ दिनके विहारके लिये चलेंगे।"

"अच्छा भन्ते!"—कह आयुष्मान् आनन्द आसनी ले भगवान्के पीछे-पीछे चले। तब भगवान् जहाँ चापाल-चैत्य था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। आयुष्मान् आनन्द भी अभिवादन कर। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दसे भगवान्ने यह कहा—'आनन्द! वैशाली रमणीय है, ' । उदयन चैत्य ''। गौतमक चैत्य । सत्तम्ब चैत्य' । बहुपुत्र चैत्य । आनन्द चैत्य । चापाल चैत्य रमणीय है।

६० "आनन्द! जिसने चार **ऋद्धिपाद** साधे हैं, बढा लिये है, रास्ता कर लिये है, घर कर लिये हैं, अनुस्थित, परिचित और सुसमारब्ध कर लिये हैं, यदि वह चाहे तो कल्प भर ठहर सकता है, या कल्प के बचे (काल) तक। तथागतने भी आनन्द! चार ऋद्धिपाद साधे हैं , यदि तथागत चाहें तो कल्प भर ठहर सकते हैं या कल्पके बचे (काल) तक।"

६१ ऐसे स्थूल सकेत करनेपर भी, स्थूल्त' प्रकट करनेपर भी आयुष्मान् आनन्द न समझ सके, और उन्होंने भगवान्से नहीं प्रार्थना की—

"भन्ते ! भगवान् बहुजन-हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ देव-मनुष्योंके अर्थ हित-सुखके लिये कल्प भर ठहरें", क्योंकि मारने उनके मनको फेर दिया था।

६२. दूसरी बार भी भगवान्ने कहा—"आनन्द ! जिसने चार ऋद्धिपाद . ।

तीसरी बार भी भगवान्ने कहा—"आनन्द जिसने चार ऋद्धिपाद" ।

६३ तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको सम्बोधित किया—"जाओ, आनन्द ! जिसका काल समझते हो।"

"अच्छा, भन्ते !"—कह आयुष्मान् आनन्द भगवान्को उत्तर दे आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर, न-बहुत-दूर एक वृक्षके नीचे बैठे।

६४. तब आयुष्मान् आनन्द के चले जाने के थोड़े ही समय बाद पापी (=दुष्ट) मार जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, जाकर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े पापी मारने भगवान् से यह कहा—

"भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाण को प्राप्त हों, सुगत परिनिर्वाण को प्राप्त हों। भन्ते! यह भगवान् के परिनिर्वाण का काल है। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी! मैं तबतक परिनिर्वाण को नहीं प्राप्त होऊँगा, जबतक मेरे भिक्षु श्रावक व्यक्त (=पण्डित), विनययुक्त, विशारद, बहुश्रुत, धर्म-धर, धर्मानुसार धर्म-मार्गपर आरूढ, ठीक मार्गपर आरूढ, अनुधर्मचारी न होंगे, अपने सिद्धान्त (=आचार्यक) को सीखकर उपदेश, आख्यान, प्रज्ञापन (=समझाना), प्रतिष्ठापन, विवरण = विभजन, सरलीकरण न करने लगेंगे, दूसरे के उठाये आक्षेप को धर्मानुसार खण्डन करके प्रातिहार्य के साथ धर्म का उपदेश न करने लगेंगे।' इस समय भन्ते! भगवान् के भिक्षु श्रावक ' प्रातिहार्य के साथ धर्म का उपदेश करते हैं।

भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाण को प्राप्त हों ''। भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी! मैं तब तक परिनिर्वाण को नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरी भिक्षुणी श्राविकायें'''प्रातिहार्य के साथ धर्म का उपदेश न करने लगेंगी।' इस समय '।

भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी! मैं तब तक परिनिर्वाण को नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरे उपासक श्रावक''।' इस समय '।

भन्ते! भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी! मैं तब तक परिनिर्वाण को नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरी उपासिका श्राविकायें '।' इस समय ।

भन्ते ! भगवान् यह बात कह चुके हैं—'पापी ! मै तब तक परिनिर्वाण को नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक कि यह ब्रह्मचर्य (=बुद्धधर्म) ऋद्ध (=उन्नत) = स्फीत, विस्तारित, बहुजनगृहीत, विशाल, देवताओं और मनुष्यों तक सुप्रकाशित न हो जायेगा।' इस समय भन्ते ! भगवान् का ब्रह्मचर्य • ।"

६५. ऐसा कहने पर भगवान् ने पापी मार से यह कहा—'पापी ! बेफिक्र हो, न-चिर ही तथागत का परिनिर्वाण होगा। आज से तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे।"

६६. तब भगवान् ने **चापाल-चैत्य** में स्मृति-सप्रजन्य के साथ आयु-सस्कार (=प्राण शक्ति) को छोड दिया। जिस समय भगवान् ने आयु-सस्कार छोडा, उस समय भीषण रोमाञ्चकारी महान् भूचाल हुआ, देवदुन्दुभियाँ बजीं (मेघ गर्जना हुई)। इस बात को जानकर भगवान् ने उसी समय यह उदान कहा—

६७ "मुनि ने अतुल-तुल उत्पन्न,
भव-संस्कार (=जीवन-शक्ति) को छोड दिया।

अपने भीतर रत और एकाग्रचित्त हो।

(उन्होने) आत्मोत्पत्ति के हेतु को कवच के समान तोड दिया।

६८ तब आयुष्मान् आनन्दको ऐसा हुआ—"आश्चर्य है! अद्भुत है! यह महान् भूचाल है। सु-महान् भूचाल है। भीषण रोमाञ्चकारी है। देवदुन्दुभियॉ बज रही हैं। (इस) महान् भूचाल के प्रादुर्भाव का क्या हेतु, क्या प्रत्यय है?" तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहॉ गये। जाकर भगवान् को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह कहा—

भूकम्प के आठ हेतु

"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! यह महान् भूचाल आया क्या हेतु, क्या प्रत्यय है?"

६९ "आनन्द! महान् भूचाल के प्रादुर्भाव के ये आठ हेतु, आठ प्रत्यय होते हैं। कौन से आठ?

[१] आनन्द! यह **महापृथ्वी** जलपर प्रतिष्ठित है, जल वायुपर प्रतिष्ठित है, वायु आकाश में स्थित है। किसी समय आनन्द! महावात (=तूफान) चलता है। महावात के चलनेपर पानी कम्पित होता है। हिलता पानी पृथ्वी को डुलाता है। आनन्द! महाभूचाल के प्रादुर्भाव-का यह प्रथम हेतु, प्रथम प्रत्यय है।

[२] और फिर आनन्द! कोई श्रमण या ब्राह्मण ऋद्धिमान् चेतोवशित्व (=योग-बल) को प्राप्त होता है, अथवा कोई दिव्यबलधारी, महानुभाव देवता होता है, उसने पृथ्वी-सज्ञा की थोडीसी भावना की होती है, और जल-सज्ञा की बडी भावना। वह (अपने योगबल से) पृथ्वी को कम्पित, सकम्पित, सप्रकम्पित, सप्रवेधित करता है। यह द्वितीय हेतु है ।

[३] जब बोधिसत्व तुषित देवलोक से च्युत हो होश-चेत के साथ माता की कोख में प्रविष्ट होते हैं⋯यह तृतीय ।

[४] जब बोधि-सत्व होश-चेत के साथ माता के गर्भ से बाहर आते है।⋯यह चतुर्थ हेतु है⋯।

[५] जब तथागत अनुपम बुद्धज्ञान (=सम्यक् सम्बोधि) का साक्षात्कार करते हैं।⋯यह पञ्चम हेतु है⋯।

[६] जब तथागत अनुपम धर्मचक्र को प्रवर्तित करते है।⋯यह षष्ठ हेतु है ।

[७] और आनन्द ! जब तथागत होश-चेत के साथ जीवन-शक्ति को छोडते हैं। आनन्द ! यह महाभूचाल के प्रादुर्भाव का सप्तम हेतु, सप्तम प्रत्यय है ।

[८] और फिर आनन्द ! जब तथागत उपादिशेष निर्वाण को प्राप्त हो परिनिर्वृत्त होते हैं⋯।

यह अष्टम हेतु है। आनन्द ! महाभूचाल के आठ हेतु, प्रत्यय हैं।

अट्ठ परिसा

७० अट्ठ खो इमा आनन्द ! परिसा। कतमा
खत्तियपरिसा। [२] ब्राह्मणपरिसा। [३]
[४] समणपरिसा। [५] चातुमहाराजिकपरिसा।
तावतिंसपरिसा। [७] मारपरिसा। [८] ब्रह्मपरिसा।

७१ अभिजानामि खो पनाहं आनन्द ! अनेकसतं खत्तिय-परिसं उपसङ्कमिता तत्रपि मया सन्निसिन्नपुब्बञ्चेव सल्लपित-पुब्बञ्च साकच्छा च समापज्जितपुब्बा। तत्थ यादिसको तेसं वण्णो होति तादिसको मय्हं वण्णो होति। यादिसको तेसं सरो होति तादिसको मय्हं सरो होति। धम्मिया कथाय सन्दस्सेमि समादपेमि समुत्तेजेमि सम्पहंसेमि। भासमानञ्च मं न जानन्ति 'को नु खो अयं भासति देवो वा मनुस्सो वा'ति ?' धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहं-सेत्वा अन्तरधायामि। अन्तरहितञ्च मं न जानन्ति 'को नु खो अयं अन्तरहितो देवो वा मनुस्सो वा'ति।

७२. अभिजानामि खो पनाहं आनन्द ! अनेकसतं ब्राह्मण-परिसं पे॰। गहपतिपरिसं पे॰ समणपरिसं पे॰ चातु-महाराजिकपरिसं पे॰ तावतिंसपरिसं पे॰ मारपरिसं पे॰ ब्रह्मपरिसं उपसङ्कमिता तत्रपि मया सन्निसिन्नपुब्बञ्चेव सल्लपितपुब्बञ्च साकच्छा च समापज्जितपुब्बा। तत्थ यादि-सको तेसं वण्णो होति तादिसको मय्हं वण्णो होति। यादिसको तेसं सरो होति तादिसको मय्हं सरो होति। धम्मिया कथाय सन्दस्सेमि समादपेमि समुत्तेजेमि सम्पहंसेमि। भासमानञ्च मं न जानन्ति 'को नु खो अयं भासति देवो वा मनुस्सो वा'ति ?' धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा अन्तरधायामि। अन्तरहितञ्च मं न जानन्ति 'को नु खो अयं

आठ परिषद्

७०. "आनन्द ! ये आठ (प्रकार की) परिषद् (=सभा) होती हैं। कौनसी आठ ? [१] क्षत्रिय-परिषद्, [२] ब्राह्मण-परिषद्, [३] गृहपति-परिषद्, [४] श्रमण-परिषद्, [५] चातुर्महाराजिक-परिषद्, [६] त्रायस्त्रिंश-परिषद्, [७] मार-परिषद्, और [८] ब्रह्म परिषद्।

७१ आनन्द ! मुझे सैकड़ों क्षत्रिय-परिषदों में जाना स्मरण है, वहाँ भी मैं सबसे पहले बैठा, सबसे पहले बातचीत की, और सबसे पहले सत्संग किया। वहाँ जैसा उनका रूप रंग होता था, वैसा मेरा रूपरंग होता था। जैसा उनका स्वर होता था, वैसा मेरा स्वर होता था। मैं उन्हें धार्मिक-कथा कहता, दिखलाता, ग्रहण कराता, समुत्तेजित करता, संविग्न करता। मेरे बोलते हुए वे नहीं जानते कि यह कौन बोल रहा है देवता या मनुष्य ? उन्हें धार्मिक-कथा कह, दिखला ° संविग्न कर अन्तर्धान हो जाता। अन्तर्धान हो जाने पर (भी) मुझे नहीं जानते कि यह कौन अन्तर्धान हुआ है देवता या मनुष्य ?

७२ आनन्द ! मुझे सैकड़ों ब्राह्मण-परिषदों में जाना स्मरण है ।° गृहपति परिषदों में । श्रमण-परिषदों में ।° चातुर्महाराजिक

अन्तरहितो देवो वा मनुस्सो वा'ति।'
परिसा।

अट्ठ अभिभायतनानि

७१. अट्ठ खो इमानि आनन्द ! अभिभायतनानि। कतमानि अट्ठ ?

[१] अज्झत्तं रूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति परित्तानि सुवण्णदुब्बण्णानि, तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी'ति एवंसञ्ञी होति। इदं पठमं अभिभायतनं।

[२] अज्झत्तं रूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति अप्पमाणानि सुवण्णदुब्बण्णानि तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी'ति एवंसञ्ञी होति। इदं दुतियं अभिभायतनं।

[३] अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति परित्तानि सुवण्णदुब्बण्णानि, तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी'ति एवंसञ्ञी होति। इदं ततियं अभिभायतनं।

[४] अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति अप्पमाणानि सुवण्णदुब्बण्णानि तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी'ति एवंसञ्ञी होति। इदं चतुत्थं अभिभायतनं।

[५] अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति नीलानि नीलवण्णानि नीलनिदस्सनानि नीलनिभासानि। सेय्यथापि नाम उमापुप्फं नीलं नीलवण्णं नीलनिदस्सनं नीलनिभासं। सेय्यथा वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं नीलं नीलवण्णं नीलनिदस्सनं नीलनिभासं। एवमेव अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति नीलानि नीलवण्णानि नीलनिदस्सनानि, नीलनिभासानि तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी'ति एवंसञ्ञी होति। इदं पञ्चमं अभिभायतनं।

[६] अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति

परिषदों मे । त्रायस्त्रिंश परिषदों में· ·।·· मार-परिषदों मे । ब्रह्मपरिषदों में·· । आनन्द ! ये आठ परिषद् हैं ।

आठ अभिभू-आयतन

७३ 'आनन्द ! यह आठ अभिभू-आयतन (=एक प्रकार की योग-क्रिया) हैं । कौनसे आठ ?

[१] अपने भीतर अकेला रूप का ख्याल रखनेवाला होता है, और बाहर स्वल्प सुवर्ण या दुर्वर्ण रूपों को देखता है । 'उन्हें दबाकर (=अभिभूय) जानता देखता हूँ'—ऐसा ख्याल रखनेवाला होता है । यह प्रथम अभिभू आयतन है ।

[२] अपने भीतर अकेला अ-रूप का ख्याल रखनेवाला होता है, और बाहर अपरिमित सुवर्ण या दुर्वर्ण रूपों को देखता है । 'उन्हें दबाकर जानता-देखता हूँ'—ऐसा ख्याल रखनेवाला होता है । यह द्वितीय · ।

[३] अपने भीतर अकेला अ-रूप का ख्याल रखनेवाला होता है और बाहर स्वल्प सुवर्ण या दुर्वर्ण रूपों को देखता है ।

[४] अपने भीतर अ-रूप का ख्याल बाहर सुवर्ण या दुर्वर्ण अपरिमित रूपों को देखता है ।

[५] अपने भीतर अ-रूप का ख्याल· बाहर नीले, नीले जैसे, नीलवर्ण, नीलनिदर्शन, नीलनिभास रूपों को देखता है । जैसे कि अलसी का फूल नील, नीलवर्ण, नीलनिदर्शन, नीलनिभास होता है, (वैसा) रूपोंको देखता है । जैसे दोनों ओरसे चिकना नील ··वाराणसी का वस्त्र हो, ऐसे ही अपने भीतर अ-रूप· ।

[६] अपने भीतर अरूप , बाहर पीत (=पीले) देखता है ।

पीतानि पीतवण्णानि पीतनिद्दस्सनानि
थापि नाम कणिकारपुप्फं पीतवण्णं पीतनिद्दस्सनं
सेय्यथा वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं पीतं
पीतवण्णं पीतनिद्दस्सनं पीतनिभासं। एवमेव अज्झत्तं अरूप-
सञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति पीतानि पीतवण्णानि
पीतनिद्दस्सनानि पीतनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि
पस्सामी'ति एवंसञ्ञी होति। इदं छट्ठं अभिभायतनं।

[७] अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति
लोहितकानि लोहितकवण्णानि लोहितकनिद्दस्सनानि लोहितक-
निभासानि। सेय्यथापि नाम बन्धुजीवकपुप्फं लोहितकं
लोहितकवण्णं लोहितकनिद्दस्सनं लोहितकनिभासं। सेय्यथापि
वा पन तं वत्थं बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं लोहितकं
लोहितकवण्णं लोहितकनिद्दस्सनं लोहितकनिभासं। एवमेव
अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति लोहितकानि
लोहितकवण्णानि लोहितकनिद्दस्सनानि लोहितकनिभासानि।
'तानि अभिभुय्य जानामि पस्सामी'ति एवंसञ्ञी होति।
इदं सत्तमं अभिभायतनं।

[८] अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको बहिद्धा रूपानि पस्सति
ओदातानि ओदातवण्णानि ओदातनिद्दस्सनानि ओदातनिभा-
सानि। सेय्यथापि नाम ओसधितारका ओदाता ओदातवण्णा ओदात-
निद्दस्सना ओदातनिभासा। सेय्यथा वा पन तं वत्थं
बाराणसेय्यकं उभतोभागविमट्ठं ओदातं ओदातवण्णं ओदात-
निद्दस्सनं ओदातनिभासं। एवमेव अज्झत्तं अरूपसञ्ञी एको
बहिद्धा रूपानि पस्सति ओदातानि ओदातवण्णानि ओदात-
निद्दस्सनानि ओदातनिभासानि। 'तानि अभिभुय्य जानामि
पस्सामी'ति एवंसञ्ञी होति। इदं अट्ठमं अभिभायतनं। इमानि
खो आनन्द! अट्ठ अभिभायतनानि।

जैसे कि कर्णिकारका फूल पीत॰ , जैसे कि दोनों ओरसे चिकना पीत ॰ वाराणसीका वस्त्र॰ ।

[७] अपने भीतर अरूप॰ , बाहर लोहित (=लाल देखता) है। जैसे कि बन्धुजीवक (=अँडहुल) का फूल लोहित , जैसे कि लाल वाराणसीका वस्त्र॰ ।

[८] अपने भीतर अरूप , बाहर सफेद॰ देखता है। जैसे कि शुक्रतारा सफेद॰ , जैसे कि ॰ 'सफेद' वाराणसीका वस्त्र । आनन्द ! ये आठ अभिभू-आयतन हैं।

आठ विमोक्ष

७४ "और फिर आनन्द! ये आठ विमोक्ष हैं! कौनसे आठ?

[१] रूपी (=रूपवाला) रूपोंको देखता है। यह प्रथम विमोक्ष है।

[२] शरीरके भीतर अरूपका ख्याल रखनेवाला हो बाहर रूपोंको देखता है ।

[३] सुभ (=शुभ्र) ही अधिमुक्त (=मुक्त) होता है ।

[४] सर्वथा रूपके ख्यालको अतिक्रमण कर, प्रतिहिंसा के ख्याल के लुप्त होने से, नानापन के ख्याल को मन में न करने से 'आकाश अनन्त है'—इस आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहरता है ।

[५] सर्वथा आकाशानन्त्यायतन को अतिक्रमण कर 'विज्ञान अनन्त है'—इस विज्ञानानन्त्यायतन को प्राप्त हो विहरता है ।

[६] सर्वथा विज्ञानानन्त्यायतन को अतिक्रमण कर 'कुछ नहीं है' —इस आकिंचन्यायतन को प्राप्त हो विहरता है ।

[७] सर्वथा आकिंचन्यायतन को अतिक्रमण कर नैवसज्ञानासज्ञा-यतन को प्राप्त हो विहरता है ।

[८] सर्वथा नैवसज्ञानासज्ञायतन को अतिक्रमण कर सज्ञा-वेदयितनिरोध (=सज्ञा की वेदना का जहाँ निरोध हो) को प्राप्त हो विहरता है। यह आठवाँ विमोक्ष है। आनन्द! ये आठ विमोक्ष हैं।

आनन्द की याचना

७५ "एक समय आनन्द! मैं अभी तुरत ही बुद्धत्व को प्राप्त हो उरु-वेला में नेरजरा नदी के तीर अजपाल बरगद के नीचे विहार करता था। तब आनन्द! दुष्ट (=पापी) मार जहाँ मैं था वहाँ आया। आकर एक

ओर खडा हो गया। एक ओर खडा हो • बोला—'भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाण को प्राप्त हों, सुगत! परिनिर्वाण को प्राप्त हों भन्ते! अब भगवान् के परिनिर्वाण का समय हो गया।'

७६ ऐसा कहने पर आनन्द! मैने दुष्ट मार से कहा—'पापी! मै तब तक परिनिर्वाण को नहीं प्राप्त होऊँगा, जब तक मेरे भिक्षु श्रावक निपुण (=व्यक्त), विनय-युक्त, विशारद, बहुश्रुत, धर्मधर (=उपदेशों को कठस्थ रखनेवाले), धर्म के मार्गपर आरूढ,ठीक मार्ग पर आरूढ, धर्मानुसार आचरण करनेवाले, अपने सिद्धान्त (=आचार्यक) को ठीक से पढ कर न व्याख्यान करने लगेगे, न उपदेश करेंगे, न प्रज्ञापन करेंगे, न स्थापन करेंगे, न विवरण करेंगे, न विभाजन करेगे, न स्पष्ट करेंगे, दूसरों द्वारा उठाये अपवाद को धर्म के साथ अच्छी तरह पकडकर प्रातिहार्यके साथ धर्म का उपदेश न करेंगे।

७७ जब तक कि मेरी भिक्षुणी-श्राविकाये (=शिष्याये) निपुण •।

७८ उपासक-श्रावक । ••

७९ • उपासिका-श्राविकाये ।

सकं आचरियकं उग्गहेत्वा आचिक्खिस्सन्ति
पञ्ञपेस्सन्ति पट्ठपेस्सन्ति
करिस्सन्ति उप्पन्नं
सप्पाटिहारियं धम्मं देसेस्सन्ति।

८० न तावाहं पापिम! परिनिब्बायिस्सामि,
ब्रह्मचरियं न इद्धञ्चेव भविस्सति
पुथुभूतं यावदेव मनुस्सेहि सुप्पकासितं'न्ति।

८१ इदानेव खो आनन्द! अज्ज चापाले चेतिये पापिमा येनाहं तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा एकमन्तं एकमन्तं ठितो खो आनन्द! मारो पापिमा मं 'परिनिब्बातु दानि भन्ते! भगवा, परिनिब्बातु सुगतो! परिनिब्बानकालो दानि भन्ते! भगवतो। भासिता खो पनेसा भन्ते! भगवता वाचा—"न तावाहं पापिम! परिनिब्बायिस्सामि याव मे भिक्खू न सावका भविस्सन्ति…पे…। याव मे भिक्खुनियो न साविका भविस्सन्ति…पे…। याव मे उपासका न सावका भविस्सन्ति …पे…। याव मे उपासिका न साविका भविस्सन्ति …पे…। याव मे इदं ब्रह्मचरियं इद्धञ्चेव न भविस्सति फीतञ्च वित्थारिकं बाहुजञ्ञं पुथुभूतं यावदेव मनुस्सेहि सुप्पकासितं। परिनिब्बातु दानि भन्ते! भगवा परिनिब्बातु सुगतो! परिनिब्बानकालो दानि भन्ते! भगवतो'ति।

८२ एवं वुत्ते अहं आनन्द! मारं पापिमन्तं एतदवोचं—'अप्पोस्सुक्को त्वं पापिम! होहि। न चिरं तथागतस्स परिनिब्बानं भविस्सति। इतो तिण्णं मासानं अच्चयेन तथागतो परिनिब्बायिस्सती'ति।" इदानेव खो आनन्द! अज्ज चापाले चेतिये तथागतेन सतेन सम्पजानेन आयुसङ्खारो ओस्सट्ठो'ति।

८३ एवं वुत्ते आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—'तिट्ठतु भन्ते! भगवा कप्पं तिट्ठतु सुगतो! कप्पं बहुजन-

८० · जब तक यह ब्रह्मचर्य (=बुद्धधर्म) समृद्ध, वृद्धिगत, विस्तार को प्राप्त, बहुजन-सम्मानित, विशाल और देव-मनुष्यों तक सुप्रकाशित न हो जायगा।

८१. आनन्द! अभी आज चापाल-चैत्य मे पापी मार मेरे पास आया। आकर एक ओर खडा ·हो बोला—'भन्ते! भगवान् अब परिनिर्वाण को प्राप्त हों·।

८२ ऐसा कहने पर मैंने आनन्द! पापी मारसे यह कहा—'पापी! बेफिक्र हो, आज से तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे।' अभी आनन्द! चापाल-चैत्य में तथागत ने होश-चेता के साथ जीवन-शक्ति को छोड दिया।"

८३ ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह कहा—

"भन्ते! भगवान् बहुजन-हितार्थ, बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ, देव-मनुष्यों के अर्थ-हित-सुख के लिये कल्प भर ठहरें।"

"बस आनन्द! मत तथागत से प्रार्थना करो! आनन्द! तथागत से प्रार्थना करने का समय नहीं रहा।"

८४. दूसरी बार भी आयुष्मान् आनन्द ने ·। तीसरी बार भी ।

"आनन्द! तथागत की बोधि (=परज्ञान) पर विश्वास करते हो?"

"हाँ, भन्ते!"

"तो आनन्द! क्यों तीन बार तक तथागत को दबाते हो?"

८५. "भन्ते! मैंने यह भगवान् के मुख से सुना, भगवान् के मुख से ग्रहण किया—'आनन्द! जिसने चार ऋद्धिपाद साधे हैं ··।"

"विश्वास करते हो आनन्द!"

"हाँ, भन्ते!"

"तो आनन्द! यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है, जो कि तथागत के वैसा उदार- (=स्थूल) भाव प्रकट करने पर, उदार-भाव दिखलाने पर भी तुम नहीं समझ सके। तुमने तथागत से नहीं याचना की—'भन्ते! भगवान् कल्प भर ठहरें।' यदि आनन्द! तुमने

याचना की होती, तो तथागत दो ही बार तुम्हारी बात को अस्वीकृत करते, तीसरी बार स्वीकार कर लेते। इसलिये, आनन्द! यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है।

८६. "आनन्द! एक समय मैं राजगृह के गृध्रकूट-पर्वत पर विहार करता था। वहाँ भी आनन्द! मैंने तुमसे कहा—आनन्द! राजगृह रमणीय है। गृध्रकूट-पर्वत रमणीय है। आनन्द! जिसने चार ऋद्धिपाद साधे हैं ...। तथागत के वैसा उदार-भाव प्रकट करने पर भी तुम नहीं समझ सके। आनन्द! यह तुम्हारा ही दुष्कृत है, तुम्हारा ही अपराध है।

८७ "आनन्द! एक समय मैं वहीं राजगृह के गौतम-न्यग्रोध में विहार करता था ...। ... राजगृह के चोरप्रपात पर ...। राजगृह में

वैभार-पर्वत की बगल मे सप्तपर्णी गुहा मे ·।· ·ऋषिगिरि की वगल में कालशिला पर· ·।· शीतवनके सर्पशौंडिक पहाड़ पर·· । ···तपोदाराम में·· । वेणुवन में कलन्दक-निवाप मे ··। जीवकाम्रवनमें··· ।···मद्रकुक्षिमृगदाय में विहार करता था। वहाँ भी आनन्द! मैंने तुमसे कहा—आनन्द! रमणीय है राजगृह। रमणीय है गौतमन्यग्रोध ·। · 'तुम्हारा ही'··अपराध है।

८८. "आनन्द! एक बार मैं इसी वैशाली के उदयनचैत्य में विहार करता था··। ··गौतमक-चैत्य · । · सप्ताम्र-चैत्य ·· ।

वहुपुत्रक चैत्य'' । '''सारन्दद-चैत्य''' । अभी आज मैंने आनन्द! तुम्हे इस चापाल चैत्य में कहा—आनन्द! रमणीय है वैशाली ''।' तुम्हाराही अपराध है।

८९ आनन्द ! क्या मैंने पहले ही नहीं कह दिया—सभी प्रियों, मानापों से जुदाई, वियोग, अन्यथाभाव होता है। सो वह आनन्द ! कहाँ मिल सकता है कि जो उत्पन्न, भूत, संस्कृत, नाशवान् है, वह नष्ट न हो। यह सम्भव नहीं। आनन्द ! जो यह तथागत ने जीवन संस्कार छोड़ा, त्यागा, प्रहीण, प्रतिनिःसृष्ट किया, तथागत ने बिल्कुल पक्की बात कही है—जल्दी ही : आज से तीन मास बाद तथागत का परिनिर्वाण होगा। जीवन के लिए तथागत क्या फिर वमन किये को निगलेंगे ! सम्भव नहीं।

कूटागारशाला में धर्मोपदेश

९० "आओ आनन्द ! जहाँ महावन-कूटागारशाला है, वहाँ चलें।"

"अच्छा भन्ते।"

तब भगवान् आयुष्मान् आनन्द के साथ जहाँ महावन कूटागार-शाला थी, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनन्द से बोले—"आनन्द ! जाओ

ैशाली के पास जितने भिक्षु विहार करते हैं, उनको उपस्थानशाला में एकत्रित करो।" ।

९१. तब भगवान् जहाँ उपस्थानशाला थी वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। बैठकर भगवान् ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—

"इसलिए भिक्षुओ! मैंने जो धर्म जानकर उपदेश किये हैं तुम अच्छी तौर से सीखकर उनका सेवन करना, भावना करना, बढ़ाना, जिसमें कि यह ब्रह्मचर्य अध्वनीय=चिरस्थायी हो, यह (ब्रह्मचर्य) बहुजन हितार्थ, बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकम्पार्थ, देव मनुष्यों के अर्थ-हित-सुख के लिए हो। भिक्षुओ! मैंने यह कौन से धर्म, जानकर उपदेश किये हैं, जिन्हें अच्छी तरह सीखकर. ' जैसे कि [१] चार स्मृति-प्रस्थान, [२] चार सम्यक् प्रधान, [३] चार ऋद्धिपाद, [४] पाँच इन्द्रिय, [५] पाँच बल, [६] सात बोध्यंग, [७] आर्य अष्टांगिक-मार्ग।' ।

९२. तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—"हन्त! भिक्षुओ! अब तुम्हें कहता हूँ—संस्कार (=कृतवस्तु), नाश होनेवाले हैं, प्रमाद रहित हो (आदर्शका) सम्पादन करो। अचिर काल में ही तथागत का परिनिर्वाण होगा। आज से तीन मास बाद तथागत परिनिर्वाण पायेंगे।"

भगवान् ने यह कहा। सुगत शास्ता ने यह कहकर फिर यह भी

"मेरी आयु परिपक्व हो गयी, मेरा जीवन थोड़ा है।

तुम्हें छोड़कर जाऊँगा, मैंने अपने करने लायक (काम) को कर लिया।

भिक्षुओ ! निरालस, सावधान, सुशील होओ।

सकल्प का अच्छी तरह समाधान कर अपने चित्त की रक्षा करो।

जो इस धर्म में प्रमादरहित हो उद्योग करेगा,

वह आवागमन को छोड़ दु:ख का अन्त करेगा ॥

तृतीय भाणवार समाप्त।

[८]

वैशाली का अन्तिम दर्शन

१३. तब भगवान् ने पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र-चीवर ले वैशाली में भिक्षाटन कर, भोजनोपरान्त नागावलोकन (=हाथी की तरह सारे शरीर को घुमाकर देखना) से वैशाली को देखकर, आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया—"आनन्द ! तथागत का यह अन्तिम वैशाली-दर्शन होगा। आओ आनन्द ! जहाँ भण्डग्राम है, वहाँ चलें।"

"अच्छा भन्ते !" कह कर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को उत्तर दिया।

१४. तब भगवान् महाभिक्षु-संघ के साथ जहाँ भण्डग्राम था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भण्डग्राम में विहार करते थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ ! चार धर्मों का अवबोध न होने से, प्रतिबोध न होने से ही इस प्रकार दीर्घकाल तक मेरा और तुम्हारा दौड़ना और चक्कर काटना लगा रहा। कौन से चार ?

तयिदं भिक्खवे । अरियं सीलं अनुबुद्धं पटिविद्धं समाधि अनुबुद्धो पटिविद्धो । अरिया पञ्ञा विद्धा । अरिया विमुत्ति अनुबुद्धा पटिविद्धा । तण्हा खीणा भवनेत्ति, नत्थि दानि पुनब्भवो'ति ।'

९५. इदमवोच भगवा इदं वत्वा सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था :—

सीलं समाधि पञ्ञा च, विमुत्ति च अनुत्तरा ।
अनुबुद्धा इमे धम्मा गोतमेन यसस्सिना ॥
इति बुद्धो अभिञ्ञाय धम्ममक्खासि भिक्खुनं ।
दुक्खस्सन्तकरो सत्था चक्खुमा परिनिब्बुतो'ति ॥

९६. तत्रापि सुदं भगवा भण्डगामे विहरन्तो एतदेव बहुलं भिक्खूनं धम्मिकथं करोति 'इति सीलं, इति समाधि, इति पञ्ञा सीलपरिभावितो समाधि महप्फलो होति महानिसंसो वे । पञ्ञापरिभावितं चित्तं सम्मदेव आसवेहि विमुच्चति । सेय्यथिदं—कामासवा भवासवा दिट्ठासवा अविज्जासवा'ति ।

९७. अथ खो भगवा भण्डगामे यथाभिरन्तं विहरित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'आयामानन्द ! येन हत्थिगामो, येन अम्बगामो येन जम्बुगामो येन भोगनगरं, तेनुपसङ्कमिस्सामा'ति । 'एवं भन्ते'ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि । अथ खो भगवा महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन भोगनगरं तदवसरि ।

चत्तारो महापदेसा

९८. तत्र सुदं भगवा भोगनगरे विहरति आनन्दे चेतिये । तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—'चत्तारोमे भिक्खवे ! महापदेसे देसिस्सामि तं सुणाथ साधुकं मनसि करोथ,

[१] भिक्षुओ ! आर्यशील का ज्ञान न होने से, प्रतिवेध न होने से । [२] भिक्षुओ ! आर्य समाधिका ' ''। [३] भिक्षुओ ! आर्य प्रज्ञा का' । [४] भिक्षुओ ! आर्य विमुक्ति का ' ।

भिक्षुओ ! उस आर्य-शील का ज्ञान हुआ, प्रतिवेध हुआ । उस आर्य-समाधिका ''। उस आर्य-प्रज्ञा का'' । उस आर्य-विमुक्ति का'' । भव-तृष्णा नष्ट हो गई । भव-नेत्री जाती रही । अब पुनर्जन्म नहीं होगा ।

९५. भगवान् ने यह कहा । यह कहकर आगे सुगत शास्ता ने यह भी कहा—

यशस्वी गौतमने शील, समाधि, प्रज्ञा,
तथा सर्वश्रेष्ठ विमुक्तिका प्रतिवेध प्राप्त किया ।
बुद्ध ने इसे जानकर भिक्षुओं को धर्म का उपदेश किया ।
दुःख का अन्त करनेवाले शास्ता, चक्षुष्मान् शान्त हो गये ।

९६. वहाँ भण्डग्राम में विहार करते भी भगवान् भिक्षुओं को प्राय. यही उपदेश देते थे—'यह शील है, यह समाधि है, यह प्रज्ञा है ''।

९७ तब भगवान् ने भण्डग्राम में इच्छानुसार विहार कर आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया—'आओ आनन्द ! जहाँ हस्तिग्राम है, जहाँ आम्रग्राम है, जहाँ जम्बूग्राम है, जहाँ भोगनगर है, वहाँ चलें ।' 'अच्छा भन्ते !' कह कर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को उत्तर दिया । तब भगवान् महा-भिक्षुसघ के साथ जहाँ भोगनगर था, वहाँ गये ।

चार महाप्रदेश

९८ वहाँ भोगनगर में भगवान् आनन्द-चैत्य में विहार करते थे । वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ ! चार महाप्रदेश का तुम्हें उपदेश करता हूँ, उन्हें सुनो, अच्छी तरह मन में करो,

भाषण करता हूँ।" "अच्छा भन्ते!" कह उन भिक्षुओ ने भगवान् को उत्तर दिया।

९९. भगवान् ने यह कहा—

[१] "भिक्षुओ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे—आवुसो! मैंने इसे भगवान् के मुख से सुना, मुख से ग्रहण किया है, यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का उपदेश है, तो भिक्षुओ! उस भिक्षु के भाषण का न अभिनन्दन करना चाहिए, न निन्दा करनी चाहिए। न अभिनन्दन कर, निन्दा न कर, उन पद-व्यजनों को अच्छी तरह सीखकर, सूत्र से तुलना करना चाहिए, विनय में देखना चाहिए। यदि वह सूत्र से तुलना करने पर, विनय में देखने पर, न सूत्र में उतरते हैं, न विनय में दिखाई देते हैं, तो विश्वास करना चाहिए कि अवश्य वह उस भगवान् का वचन नहीं है, इस भिक्षु का ही दुर्गृहीत है। ऐसा (होने पर) भिक्षुओ! उसको छोड देना चाहिए। यदि वह सूत्र से तुलना करने पर, विनय में देखने पर, सूत्र में भी उतरता है, विनय में भी दिखाई देता है, तो विश्वास करना चाहिए—अवश्य यह उस भगवान् का वचन है, इस भिक्षु का यह सुगृहीत है। भिक्षुओ! इसे प्रथम महाप्रदेश (कसौटी) धारण करना।

"[२] और फिर भिक्षुओ! यदि (कोई) भिक्षु ऐसा कहे—आवुसो! अमुक आवास में स्थविर-युक्त प्रमुख-युक्त (भिक्षु)-सघ विहार करता है। मैंने उस सघ के मुख से सुना, मुख से ग्रहण किया है—यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का शासन है। । तो विश्वास करना,

कि अवश्य उन भगवान् का वचन है, इसे संघ ने सुगृहीत किया है। भिक्षुओ! यह दूसरा महाप्रदेश धारण करना।

"[३] "भिक्षु ऐसा कहे—'आवुसो! अमुक आवास मे बहुत से बहुश्रुत, आगत-आगम—(= आगमज्ञ), धर्म-धर, विनय धर, मात्रिका-धर, स्थविर भिक्षु विहार करते हैं। यह मैंने उन स्थविरों के मुख से सुना है, मुख से ग्रहण किया है। यह धर्म है। । " ।

"[४] भिक्षुओ! यदि भिक्षु ऐसा कहे—'अमुक आवास में एक बहुश्रुत "स्थविर भिक्षु विहार करता है। यह मैंने उस स्थविर के

मुख से सुना है, मुख से ग्रहण किया है। यह धर्म है, यह विनय । भिक्षुओ ! इसे चतुर्थ महाप्रदेश धारण करना।

भिक्षुओ ! इन चार महाप्रदेशों को धारण करना।"

१००. वहाँ भोगनगर में आनन्द चैत्य में विहार करते समय भी भगवान् भिक्षुओं को बहुत करके यही धर्म कथा कहते थे—'यह शील है, यह समाधि है, यह प्रज्ञा है ।

पावा मे

१०१. " तब भगवान् भिक्षु सघ के साथ जहाँ पावा[1] थी, वहाँ गये। वहाँ पावा में भगवान् चुन्द कर्मार-(= सोनार) -पुत्र के आम्रवन में विहार करते थे।

चुन्द कर्मारपुत्र ने सुना—भगवान् पावा मे आये है, पावा में मेरे आम्रवन में विहार करते हैं। तब चुन्द कर्मार-पुत्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे चुन्द कर्मार-पुत्र को भगवान् ने धार्मिक-कथा से समुत्तेजित किया। तब चुन्द" ने भगवान् की धार्मिक-कथा से" समुत्तेजित हो भगवान् से यह कहा—

"भन्ते ! भिक्षुसघ के साथ भगवान् मेरा कल का भोजन स्वीकार करें।"

---

१ सठियाँव-फाजिलनगर, जिला देवरिया।

मत्तं सद्धिं भिक्खुसंघेना'ति। अधिवासेसि भगवा

१०२. अथ खो चुन्दो कम्मारपुत्तो भगवतो विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं पक्कामि। अथ खो चुन्दो कम्मारपुत्तो तस्सा रत्तिया सके निवेसने पणीतं खादनीयं भोजनीयं सूकरमद्दवं। भगवतो कालं आरोचापेसि—'कालो भन्ते निट्ठितं भत्त'न्ति।

१०३. अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवर-मादाय सद्धिं भिक्खुसंघेन येन चुन्दस्स कम्मारपुत्तस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा चुन्दं कम्मारपुत्तं आमन्तेसि—'यं ते चुन्द! सूकर-मद्दवं पटियत्तं, तेन मं परिविस, यं पनञ्ञं खादनीयं भोजनीयं पटियत्तं तेन भिक्खुसंघं परिविसा'ति।

'एवं भन्ते'ति खो चुन्दो कम्मारपुत्तो भगवतो पटिस्सुत्वा यं अहोसि सूकरमद्दवं पटियत्तं, तेन भगवन्तं परिविसि। यं पनञ्ञं खादनीयं भोजनीयं पटियत्तं तेन भिक्खुसंघं परिविसि।

१०४. अथ खो भगवा चुन्दं कम्मारपुत्तं आमन्तेसि—'यं ते चुन्द! सूकरमद्दवं अवसिट्ठं तं सोब्भे निखणाहि। नाहं तं चुन्द! पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समण-ब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय यस्स तं परिभुत्तं सम्मा परिणामं गच्छेय्य अञ्ञत्र तथागतस्सा'ति।

'एवं भन्ते'ति खो चुन्दो कम्मारपुत्तो भगवतो पटिस्सुत्वा यं अहोसि सूकरमद्दवं अवसिट्ठं तं सोब्भे निखणित्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि। उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो चुन्दं कम्मारपुत्तं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

भगवान् ने मौन से स्वीकार किया।

१०२ तब चुन्द कर्मार-पुत्र भगवान् की स्वीकृति को जान, आसन से उठ, भगवान् को अभिवादन और प्रदक्षिणा कर के चला गया। तब चुन्द कर्मार-पुत्र ने उस रात के बीतने पर उत्तम खाद्य-भोज्य (और) बहुत सा शूकर-मार्दव (= सुकरमद्दव) तैयार करवा, भगवान् को काल की सूचना दी—"भगवान्! भोजन का समय हो गया है।"

१०३ तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहन कर पात्र-चीवर ले भिक्षु-संघ के साथ जहाँ चुन्द कर्मार-पुत्र का घर था, वहाँ गये। जाकर बिछे आसन पर बैठे। बैठे हुए भगवान् ने चुन्द कर्मार-पुत्र को आमन्त्रित किया—"चुन्द! जो शूकर-मार्दव तय्यार किया है, उसे हमें परोस, और जो खाद्य-भोज्य तैयार है, उसे भिक्षु-संघ को परोस।"

"अच्छा भन्ते!" कह · भिक्षु-संघको परोसा।

१०४ तब भगवान् ने चुन्द कर्मार-पुत्र को आमन्त्रित किया—'चुन्द! जो शूकर-मार्दव बच गया है, उसको गड्ढा खोदकर गाड दे। चुन्द! देव, मार, ब्रह्मा सहित लोक में और श्रमण-ब्राह्मण, और देवता-मनुष्य सहित इस प्रजा में तथागत को छोडकर और कोई नहीं दिखाई देता, जो इस (भोजन) को पचा सकेगा।'

"अच्छा भन्ते!" ·। एक ओर बैठे चुन्द कर्मार-पुत्र को भगवान् धार्मिक-कथा से · समुत्तेजित कर आसन से उठकर चल दिये।

१०५ तब चुन्द कर्मार-पुत्र के भात (= भोजन) को खाकर भगवान को खून गिरने की, कडी बीमारी उत्पन्न हुई, मरणान्तक सख्त पीडा होने लगी। उसे भगवान् ने स्मृति-सप्रजन्ययुक्त हो, बिना दु:खित हुए, सहन किया।

१०६ तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया— "आओ आनन्द! जहाँ कुशीनारा है, वहाँ चलें।" "अच्छा भन्ते!" कहकर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को उत्तर दिया।

मैंने सुना है—चुन्द कर्मार के भात को भोजन कर,

धीर को मरणान्तक भारी रोग हो गया।

शूकर-मार्दव के खाने पर शास्ता को भारी रोग उत्पन्न हुआ।

विरेचनों के होते समय ही भगवान् ने कहा—चलो, कुशीनारा चलें॥

१०७. तब भगवान् मार्ग से हटकर एक वृक्ष के नीचे गये। जाकर आयुष्मान् आनन्द को सम्बोधित किया—'आनन्द! मेरे लिए चौपेती सघाटी बिछा दो, मै थक गया हूँ, बैठूँगा।'

'अच्छा भन्ते!' कह आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को उत्तर दे, चोपेती सघाटी बिछा दी। भगवान् बिछे आसन पर बैठ गए। बैठकर भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया—"जरा आनन्द! मेरे लिये पानी लाओ। प्यासा हूँ, आनन्द! पानी पीऊँगा।"

१०८ ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनद ने भगवान् से यह कहा—

"भन्ते! अभी अभी पाँच सौ गाडियाँ निकली हैं। चक्कों से मथा हिंडा पानी मैला होकर बह रहा है। भन्ते! यह सुन्दर जल वाली, शीतल जल वाली, सफेद जलवाली, सुप्रतिष्ठित रमणीय ककुत्था नदी करीब में है। वहाँ (चलकर) भगवान् पानी पीयेंगे और शरीर को ठडा करेंगे।"

'इङ्घ मे त्वं आनन्द ! पानीयं आहर, पिपासितोस्मि पिविस्सामी'ति ।'

दुतियम्पि खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं 'इदानि भन्ते ! पञ्चमत्तानि सकटसतानि अतिक्कन्तानि, तं चक्कच्छिन्नं उदकं परित्तं लुळितं आविलं सन्दति । अयं भन्ते ! ककुत्था नदी अविदूरे अच्छोदिका सातोदिका सीतोदिका सेतोदिका सुप्पतित्था रमणीया । एत्थ भगवा पानीयञ्च पिविस्सति गत्तानि च सीतीं करिस्सती'ति ।

११० ततियम्पि खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'इङ्घ मे त्वं आनन्द ! पानीयं आहर, पिपासितोस्मि आनन्द ! पिविस्सामी'ति ।

'एवं भन्ते'ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पटिस्सुत्वा पत्तं गहेत्वा येन सा नदिया तेनुपसङ्कमि । अथ खो सा नदिया चक्कच्छिन्ना परित्ता लुळिता आविला सन्दमाना आयस्मन्ते आनन्दे उपसङ्कमन्ते अच्छा विप्पसन्ना अनाविला सन्दित्थ । अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—'अच्छरियं वत भो ! तथागतस्स महिद्धिकता महानुभावता । अयं हि सा नदिया चक्कच्छिन्ना परित्ता लुळिता आविला सन्दमाना मयि उपसङ्कमन्ते अच्छा विप्पसन्ना अनाविला सन्दती'ति । पत्तेन पानीयं आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि । उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—'अच्छरियं भन्ते ! अब्भुतं भन्ते ! तथागतस्स महिद्धिकता महानुभावता । इदानि सा भन्ते ! नदिया चक्कच्छिन्ना परित्ता लुळिता आविला सन्दमाना मयि उपसङ्कमन्ते अच्छा विप्पसन्ना अनाविला सन्दित्थ । पिवतु भगवा ! पानीयं पिवतु सुगतो ! पानीयन्ति । अथ खो भगवा पानीयं अपायि ।

१११ तेन खो पन समयेन पुक्कुसो मल्लपुत्तो आळारस्स कालामस्स सावको कुसिनाराय पावं अद्धानमग्गपटिपन्नो

१०९. दूसरी बार भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—'आनन्द! मेरे लिए पानी लाओ ।'

११०. तीसरी बार भी भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—"आनन्द! मेरे लिये पानी लाओ ।"

"अच्छा भन्ते!" कह आयुष्मान् आनन्द भगवान् को उत्तर दे पात्र लेकर जहाँ वह नदी थी, वहाँ गये। तब वह चक्कों से मथे हिंडे मैले थोड़े पानी के साथ बहने वाली नदी, आयुष्मान् आनन्द के वहाँ पहुँचने पर स्वच्छ निर्मल हो बहने लगी। तब आयुष्मान् आनन्द को ऐसा हुआ—'आश्चर्य है! तथागत की महा ऋद्धि, महानुभावता को, अद्भुत है। यह नदिका (=छोटी नदी) चक्कों से मथे हिंडे मैले थोड़े पानी के साथ बह रही थी, सो मेरे आने पर स्वच्छ निर्मल बह रही है।' और पात्र में पानी भरकर भगवान् के पास ले गये। ले जाकर भगवान् से यह बोले—" आश्चर्य है भन्ते! अद्भुत है भन्ते! निर्मल बह रही है। भन्ते! भगवान् पानी पियें, सुगत पानी पियें।" तब भगवान् ने पानी पिया।

१११ उस समय आलार कालाम का शिष्य पुक्कुस मल्ल पुत्र कुशी-नारा और पावा के बीच, रास्ते में जा रहा था। पुक्कुस मल्ल पुत्र ने

भगवान् को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ ''जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया, पुक्कुस ने एक ओर बैठे भगवान् से कहा—

"आश्चर्य भन्ते! अद्‌भुत भन्ते! प्रव्रजित लोग शाततर विहार से विहरते हैं। भन्ते! पूर्वकाल में (एक बार) आलार कालाम रास्ता चलते, मार्ग से हटकर पास में दिन के विहार के लिये एक वृक्ष के नीचे बैठे। उस समय पाँच सौ गाडियाँ आलार कालाम के पास से गुजरीं, तब उस गाडियों के सार्थ (=कारवाँ) के पीछे पीछे आते एक आदमी ने आलार कालाम के पास जाकर पूछा—'क्या भन्ते! पाँच सौ गाडियाँ (इधर से) निकलते देखा है?'

"आवुस! मैंने नहीं देखा।"

"क्या भन्ते! आवाज सुनी?"

"नहीं आवुस! मैंने आवाज नहीं सुनी।"

"क्या भन्ते! सो गये थे?"

"नहीं आवुस! सोया नहीं था।"

"क्या भन्ते! होश में थे?"

"हाँ, आवुस!"

"वो भन्ते! आपने होशमें जागते हुए भी पीछे से निकली पाँच सौ गाडियों को न देखा, न (उनकी) आवाज को सुना? किन्तु (यह जो) आपकी संघाटी पर गर्द पडी है?"

"हाँ, आवुस!"

"तब भन्ते! उस पुरुष को यह हुआ—'आश्चर्य है! अद्‌भुत है!!

अहो, प्रव्रजित लोग शान्त विहार से विहरते हैं, जो कि (इन्होने) होश मे, जागते हुये भी पाँच सौ गाडियों को न देखा, न (उनकी) आवाज को सुना।'—कह आलार कालाम के प्रति बडी श्रद्धा प्रकट कर चला गया।"

११२. "तो क्या मानते हो पुक्कुस! कौन दुष्कर है, दुःसम्भव है—जो कि होश में जागते हुए पाँच सौ गाडियों का न देखना, न आवाज सुनना, अथवा होश में जागते हुये पानी के बरसते बादल के गडगडाते, बिजली के चमकने और अशनि (= बिजली) के गिरने के समय भी न (चमक) देखे, न आवाज सुने?"

११३ "क्या हैं भन्ते! पाँच सौ गाडियाँ, छ॰ सौ , सात सौ , आठ सौ, नौ सौ , दस सौ दस हजार गाडियाँ, यही दुष्कर है, दुःसम्भव है जो कि होश में जागते हुये पानी के बरसते बिजली के गिरने के समय भी न (चमक) देखे, न आवाज सुने।"

११४. "पुक्कुस! एक समय मैं आतुमाके भुसागार में विहार करता था। उस समय देव के बरसते बिजलीके गिरने से दो भाई किसान और चार बैल मर गये। तब आतुमा से आदमियों की भीड़ निकल कर वहाँ पहुँची, जहाँ पर कि वह दो भाई किसान और चार बैल मरे थे। उस समय पुक्कुस! मैं भुसागार से निकल कर द्वार पर टहल रहा था। तब पुक्कुस! उस भीड से निकल कर एक आदमी जहाँ मैं था, वहाँ आया। आकर मुझे प्रणाम कर एक ओर खडा हो गया। पुक्कुस!

उस एक ओर खड़े आदमी को मैंने यह कहा—'आवुस ! यह भीड़ क्यों एकत्र हुई है ?'

"भन्ते ! इस समय देव के बरसते बिजली के गिरने से दो भाई किसान और चार बैल मर गये। इसीलिये यह भीड़ इकट्ठी हुई है। आप भन्ते ! (उस समय) कहाँ थे ?'

'आवुस ! यहीं था।'

'क्या भन्ते ! आपने देखा ?'

'नहीं, आवुस ! नहीं देखा।'

'क्या भन्ते ! शब्द सुना ?'

'नहीं आवुस ! शब्द (भी) नहीं सुना।'

'क्या भन्ते ! सो गये थे ?'

'नहीं आवुस ! सोया नहीं था।'

'क्या भन्ते ! होश में थे ?'

'हाँ, आवुस !'

'तो भन्ते ! आपने होश मे जागते हुये भी देव के बरसते बिजली के गिरने को न देखा, न शब्द को सुना ?'

'हाँ, आवुस !'

११५ "तब पुक्कुस ! उस आदमी को हुआ—'आश्चर्य है ! अद्भुत है !! अहो प्रव्रजित लोग शान्त विहार से विहरते हैं ··'न शब्द सुने।' कह मेरे प्रति बड़ी श्रद्धा प्रकट कर चला गया।"

११६. ऐसा कहने पर पुक्कुस मल्लपुत्र ने भगवान् से यह कहा—

"भन्ते! यह मैं, जो मेरी आलार कालाम में श्रद्धा (=प्रसाद) थी, उसे हवा में उड़ा देता हूँ, या शीघ्र धार वाली नदी में बहा देता हूँ। आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! जैसे औंधे को सीधा कर दे, ढँके को खोल दे, भूले को रास्ता बतला दे, अंधेरे में तेलका चिराग रख दे, कि आँख वाले रूप को देखें, ऐसे ही भन्ते! भगवान् ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया। यह मैं भन्ते! भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षुसंघ की भी। आज से मुझे भगवान् अंजलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें।"

११७. तब पुक्कुस मल्लपुत्र ने (अपने) एक आदमी से कहा—"आ रे! मेरे इंगुर वर्ण वाले चमकते दुशाले को ले आ।"

"अच्छा, भन्ते!"—कह उस आदमी ने पुक्कुस मल्लपुत्र को कह, 'दुशाले को ला दिया। तब पुक्कुस मल्लपुत्र ने ' 'दुशाला भगवान् को अर्पित किया—"भन्ते! कृपा करके इस मेरे' 'दुशाले को स्वीकार करें।"

"तो पुक्कुस! एक मुझे ओढ़ा दे, एक आनन्द को।"

"अच्छा, भन्ते!"—कह पुक्कुस मल्लपुत्र ने भगवान् को उत्तर दे, एक शाल भगवान् को ओढ़ा दिया, एक आयुष्मान् आनन्द को। तब भगवान् ने पुक्कुस मल्लपुत्र को धार्मिक कथा द्वारा संदर्शित=समुत्तेजित संप्रहर्षित किया। भगवान् की धार्मिक कथा द्वारा संप्रहर्षित हो पुक्कुस मल्लपुत्र आसन से उठ भगवान् को अभिवदन कर प्रदक्षिणा कर चला गया।

११८. तब पुक्कुस मल्ल पुत्रके जाने के थोडी ही देर बाद आयुष्मान् आनन्द ने उस (अपने) ' शाल को भगवान् के शरीर पर ढाँक दिया। भगवान् के शरीर पर किरण-सी फूटी जान पडती थी। तब आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह कहा—आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते! कितना परिशुद्ध=पर्यवदात तथागत के शरीर का वर्ण है!! भन्ते! यह' ' दुशाला भगवान् के शरीर पर किरण-सा जान पडता है।"

११९ "ऐसा ही है आनन्द! ऐसा ही है आनन्द! दो समयों में आनन्द! तथागत के शरीर का वर्ण अत्यन्त परिशुद्ध=पर्यवदात जान पडता है। किन दो समयों में? [१] जिस समय तथागत अनुपम सम्यक्-सबोधि (=परमज्ञान) का साक्षात्कार करते हैं और [२] जिस रात तथागत उपादि (=आवागमन के कारण) रहित निर्वाण को प्राप्त होते हैं। आनन्द! इन दो समयों में ' । आनन्द! आज रात के पिछले पहर कुशीनारा के उपवत्तन (नामक) मल्लों के शालवन में जोड़े शालवृक्षों के बीच तथागत का परिनिर्वाण होगा। आओ, आनन्द! जहाँ ककुत्था[1] नदी है, वहाँ चलें।"

"अच्छा, भन्ते!" कह आयुष्मान् आनद ने भगवान् को उत्तर दिया।
इगुर वर्ण वाले चमकते दुशाले को पुक्कुस ने अर्पण किया।
उससे आच्छादित बुद्ध सोने के वर्ण जैसे शोभा देते थे॥

१२० तब महाभिक्षु सघ के साथ भगवान् जहाँ ककुत्था नदी थी, वहाँ गये। जाकर ककुत्था नदी को अवगाहन कर, स्नान कर, पान कर, उतर कर, जहाँ अम्बवन (आम्रवन) था, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् चुन्दक से बोले—"चुन्दक! मेरे लिये चौपेती सघाटी बिछा दे। चुन्दक थक गया हूँ, लेटूँगा।"

---

१ घाघी नदी, कुशीनगर से ७ मील पूरब।

"अच्छा भन्ते।"

१२१. तब भगवान् एक पैर पर दूसरे पैर को थोड़ा हटाकर रखते हुए स्मृति और संप्रजन्य के साथ, उत्थान-संज्ञा मन में करके, दाहिनी करवट सिंह-शय्या से लेटे। आयुष्मान् चुन्द वहीं भगवान् के सामने बैठे।

बुद्ध उत्तम, सुंदर स्वच्छ जलवाली
ककुत्था नदी पर जा,
लोक में अद्वितीय, शास्ता ने
अक्लान्त हो स्नान किया।
स्नानकर पानकर चुन्दक को आगे कर
भिक्षु गण के बीच में (चलते)
धर्म के वक्ता प्रवक्ता महर्षि
भगवान आम्रवन में पहुँचे॥
चुन्दक भिक्षु से कहा—
चौपेती संघाटी बिछाओ, लेटूँगा।
आत्म संयमी से प्रेरित हो तुरन्त चौपेती (संघाटी) को बिछा दिया।
अक्लान्त हो शास्ता लेट गये,
चुन्दक भी वहाँ सामने बैठ गये॥१८॥

१२२ तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—"आनन्द! शायद कोई चुन्द कर्मार पुत्र को चिंतित करे—'आवुस चुन्द! अलाभ है तुझे, तूने दुर्लभ कमाया, जो कि तथागत तेरे पिंडपात को भोजन कर परि-निर्वाण को प्राप्त हुये।' आनन्द! चुन्द कर्मार-पुत्र की इस चिंता को दूर करना (और कहना)—'आवुस! लाभ है तुझे, तूने सुलाभ कमाया, जो कि तथागत तेरे पिंडपात को भोजन कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुये।'

आवुस चुन्द ! मैंने यह भगवान् के मुख से सुना, मुख से ग्रहण किया—'यह दो पिंडपात समान फल वाले, समान विपाक वाले हैं, दूसरे पिंडपातों से बहुत ही महाफल-प्रद, महानृशंसतर हैं। कौन से दो? [१] जिस पिंडपात (=भिक्षा) को भोजन कर तथागत अनुत्तर सम्यक्-सम्बोधि (=बुद्धत्व)को प्राप्त हुए, [२] और जिस पिण्डपात को भोजनकर तथागत अनुपादिशेष निर्वाणधातु को प्राप्त हुये। आनन्द ! यह दो पिंड-पात । चुन्द कर्मारपुत्र ने आयु प्राप्त कराने वाले कर्म को संचित किया, 'वर्ण', 'सुख', 'यश', 'स्वर्ग', 'आधिपत्य प्राप्त कराने वाले कर्म को संचित किया। आनन्द ! चुन्द कर्मारपुत्र की चिन्ता को इस प्रकार दूर करना।"

तब भगवान् ने इसी अर्थ को जानकर उसी समय यह कहा—

"(दान) देने से पुण्य बढता है,
संयम से वैर नहीं संचित होता।
सज्जन बुराई को छोडता है,
(और) राग-द्वेष मोहके क्षयसे वह निर्वाण प्राप्त करता है।

चतुर्थ भाणवार समाप्त ।

[९]

कुशीनारा में

१२४. तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—"आओ आनन्द ! जहाँ हिरण्यवती[1] नदी का परला तीर है, जहाँ कुशीनारा[2] के मल्लों का शाल्वन उपवत्तन है, वहाँ चलें।"

"अच्छा भन्ते !"

तब भगवान् महाभिक्षु-संघके साथ जहाँ हिरण्यवती नदी का परला तीर था, जहाँ मल्लोंका शालवन उपवत्तन था, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनन्द से बोले—"आनन्द ! यमक (=जुडवें) शालों के बीचमें उत्तरकी ओर सिरहाना कर चारपाई (=मंचक) बिछा दे। थका हूँ, आनन्द ! लेटूँगा।"

"अच्छा भन्ते !" कह, आयुष्मान् आनन्द ने यमक-शालोंके बीच उत्तर की ओर सिरहाना करके चारपाई बिछा दी। तब भगवान् दाहिनी करवट एक पैर पर दूसरे पैर को थोडा हटा कर रखते हुए स्मृति और ज्ञान के साथ सिंह-शय्या से लेटे।

१२५ उस सयम अकाल ही में वह जोड शाल खूब फूले हुये थे। तथागत की पूजा के लिये वे (फूल) तथागत के शरीरपर बिखरते थे। दिव्य मन्दारव पुष्प आकाश से गिरते थे, वह तथागत के शरीर पर बिखरते

---

१ सोनरा नदी, कुशीनगर के निकट। 'हिरवा की नारी' भी इसे ही कहते हैं। 'कुसुम्ही नारा' भी इसका ही नाम है।

२ कुशीनगर, जिला देवरिया।

थे। दिव्य चन्दन चूर्ण । तथागत की पूजा के लिये आकाशमें दिव्य वाद्य बजते थे। दिव्य संगीत ।

[1]२६ तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनंदको संबोधित किया— "आनंद ! इस समय अकाल ही में यह जोड़े शाल सूत्र फूले हुये हैं। । किन्तु, आनन्द ! इससे तथागत सत्कृत गुरुकृत, मानित-पूजित नहीं होते। आनन्द ! जो कि भिक्षु या भिक्षुणी, उपासक या उपासिका धर्मके मार्गपर आरूढ हो विहरता है, यथार्थ मार्गपर आरूढ हो धर्मानुसार आचरण करनेवाला होता है, उससे तथागत पूजित होते हैं। ऐसा आनन्द ! तुम्हें सीखना चाहिये।"

[1]२७ उस समय आयुष्मान् उपवाण भगवान्‌पर पंखा झलते भगवान्‌के सामने खड़े थे। तब भगवान्‌ने आयुष्मान् उपवाणको हटा दिया—

"हट जाओ, भिक्षु ! मत मेरे सामने खड़े होओ।"

[1]२८ तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—'यह आयुष्मान् उपवाण चिरकालतक भगवान्‌के समीपचारी = सन्तिकावचर उपस्थाक रहे

है। किन्तु, अन्तिम समयमें भगवान्‌ने उन्हें हटा दिया—'हट जाओ ! भिक्षु' । क्या हेतु = प्रत्यय है, जो कि भगवान्‌ने आयुष्मान् उपवाणको हटा दिया— • ?'

तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! यह आयुष्मान् उपवाण चिरकाल तक भगवान्‌के • उपस्थापक रहे हैं। • 'क्या हेतु • है ?"

१२९ "आनन्द ! बहुतसे दसों लोक धातुओंके देवता तथागतके दर्शनके लिये एकत्रित हुये हैं। आनन्द ! जितना (यह) कुशीनाराका उपवत्तन मल्लोंका शालवन है, उसके चारों ओर बारह योजन तक बालके नोक गडाने भरके लिये भी स्थान नहीं है, जहाँ कि महेशाख्य देवता न हों। आनन्द ! देवता परेशान हो रहे हैं—'हम तथागतके दर्शनार्थ दूरसे आये हैं। तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध कभी ही कभी लोकमें उत्पन्न होते हैं। आज ही रातके अन्तिम पहरमें तथागतका परिनिर्वाण होगा। और यह महेशाख्य (= प्रतापी) भिक्षु ढाँकते हुये भगवान्‌के सामने खड़ा है। अन्तिम समयमें हमें तथागतका दर्शन नहीं मिल रहा है।"

१३० "भन्ते ! भगवान् देवताओंके बारमें कैसे देख रहे हैं ?"

"आनन्द ! देवता आकाशको पृथ्वी ख्यालकर रो रहे हैं। हाथ उठाकर चिल्ला रहे हैं। कटे (वृक्ष) की भाँति भूमिपर गिर रहे हैं।

(यह कहते) लोट पोट रहे हैं—'बहुत जल्दी भगवान् निर्वाणको प्राप्त हो रहे हैं। बहुत शीघ्र सुगत निर्वाणको प्राप्त हो रहे हैं। बहुत शीघ्र चक्षुष्मान् (=बुद्ध) लोकसे अन्तर्धान हो रहे हैं।' और जो देवता होश-चेतवाले हैं, वह होश चेत स्मृति सम्प्रजन्योंके साथ सह रहे हैं—'संस्कृत (=कृत वस्तुयें) अनित्य हैं, सो कहाँ मिल सकता है'।"

तीर्थस्थान

१३१. "भन्ते ! पहले दिशाओंमे वर्षावास कर भिक्षु भगवान्‌के दर्शनार्थ आते थे। उन मनोभावनीय भिक्षुओंका दर्शन, सत्संग हमें मिलता था। किन्तु भन्ते ! भगवान्‌के बाद हमें मनोभावनीय भिक्षुओंका दर्शन, सत्संग नहीं मिलेगा।"

१३२ "आनन्द ! श्रद्धालु कुल-पुत्रके लिये यह चार स्थान दर्शनीय, संवेजनीय (=वैराग्यप्रद) हैं। कौन से चार ?

[१] 'यहाँ तथागत उत्पन्न हुये (=लुम्बिनी)' यह स्थान श्रद्धालु॰।

[२] 'यहाँ तथागतने अनुत्तर सम्यक् संबोधिको प्राप्त किया' (=बोधगया) ॰।

[३] 'यहाँ तथागतने अनुत्तर (=सर्वश्रेष्ठ) धर्मचक्रका प्रवर्तन किया' (=सारनाथ) ॰।

[४] 'यहाँ तथागत अनुपादिशेष निर्वाण-धातुको प्राप्त हुये

' । ये चार स्थान दर्शनीय·· हैं । आनन्द ! श्रद्धालु भिक्षु-भिक्षुणियाँ, उपासक उपासिकायें (भविष्यमें यहाँ) आवेगी—'यहाँ तथागत उत्पन्न हुये ।' "यहाँ तथागत ने अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि (= परमज्ञान) को प्राप्त किया ।' 'यहाँ तथागत ने अनुत्तर धर्मचक्र का प्रवर्तन किया ।' 'यहाँ तथागत अनुपादिशेष निर्वाण को प्राप्त हो परिनिर्वृत्त हुए ।' जो कोई आनन्द ! चैत्यका परिभ्रमण करते हुए प्रसन्न (=पवित्र) मनसे मरेंगे, वे सब कायाके छूटने पर मृत्युके उपरान्त सुगतिको प्राप्त हो स्वर्गलोक मे उत्पन्न होगे ।"

स्त्रियाँ

१३३ "भन्ते ! स्त्रियोंके साथ हम कैसा बर्ताव करेंगे ?"

"अ-दर्शन (= न देखना), आनन्द !"

"दर्शन होनेपर भगवान् ! कैसा बर्ताव करेगे ?"

"बात न करना, आनन्द !"

"बात करते हुए भन्ते ! कैसा बर्ताव करेंगे ?"

"आनन्द ! स्मृति (=होश) को सँभाले रखना चाहिये ।"

चक्रवर्तीकी दाहक्रिया

१३४ "भन्ते ! तथागतके शरीरको हम कैसे करेंगे ?"

"आनन्द ! तथागतकी शरीर-पूजासे तुम बेपर्वाह रहो । तुम लोग आनन्द ! सत् अर्थ के लिये प्रयत्न करना, सत्-अर्थके लिये उद्योग करना । सत्-अर्थमें अप्रमादी, उद्योगी, आत्मसयमी हो विहरना । हैं, आनन्द ! क्षत्रिय पडित भी, ब्राह्मण पडित भी, गृहपति-पडित भी तथागतमें अत्यन्त अनुरक्त, वह तथागतकी शरीर-पूजा करेंगे ।"

१३५ "भन्ते ! तथागतके शरीरको कैसे करना चाहिये ?"

"जैसे आनन्द ! राजा चक्रवर्ती के शरीरके साथ करना होता है, वैसे तथागतके शरीरको करना चाहिये।"

"भन्ते ! राजा चक्रवर्तीके शरीरके साथ कैसे किया जाता है ?"

"आनन्द ! राजा चक्रवर्तीके शरीरको नये वस्त्रसे लपेटते हैं। नये वस्त्र से लपेटकर धुनी हुई रूईसे लपेटते हैं। धुनी हुई रूईसे लपेटकर नये वस्त्रसे लपेटते हैं। इस प्रकार पाँच सौ जोडोंसे चक्रवर्ती राजा के शरीरको लपेटकर तेलकी लौहद्रोणी (=दोन) में रखकर, दूसरी लौह-द्रोणीसे ढाँककर, सभी गंधों (वाले काष्ठ) की चिता बनाकर, राजा चक्रवर्तीके शरीरको जलाते हैं। (जलाकर) बडे चौरस्ते पर राजा चक्रवर्तीका स्तूप बनाते हैं। ऐसे आनन्द ! चक्रवर्ती राजाके शरीरके प्रति करते हैं। जैसे आनन्द ! चक्रवर्ती राजाके शरीरके प्रति करते हैं, वैसे तथागतके शरीरके प्रति करना चाहिए। बड़े चौरस्तेपर तथागतका स्तूप बनाना चाहिए। वहाँ जो माला, गंध या चूर्ण चढायेंगे, या अभिवादन करेंगे, या चित्त प्रसन्न करेंगे, वह दीर्घकाल तक उनके हित-सुखके लिये होगा।

स्तूपार्ह

१३६ आनन्द ! चार स्तूपार्ह (=स्तूप बनाने योग्य) हैं। कौनसे चार ?

[१] तथागत सम्यक् संबुद्ध स्तूप बनाने योग्य हैं। [२] प्रत्येक संबुद्ध स्तूप बनाने योग्य हैं। [३] तथागतका श्रावक (=शिष्य) स्तूप बनाने योग्य है। [४] चक्रवर्ती राजा स्तूप बनाने योग्य है।

क्यों आनन्द ! तथागत अर्हत् सम्यक् संबुद्ध स्तूपार्ह हैं ? 'यह उन भगवान् अर्हत् संबुद्धका स्तूप है'—(सोचकर) आनन्द ! बहुतसे लोग

चित्तको प्रसन्न करगे। वे वहाँ चित्तको प्रसन्न कर काया छूटनेपर मरनेके बाद सुगति को प्राप्त हो स्वर्ग-लोकमे उत्पन्न होंगे। इस प्रयोजनसे आनद ! तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध स्तूपार्ह हैं।

क्यो आनन्द ! प्रत्येक-सम्बुद्ध स्तूपार्ह ह ? 'यह उन भगवान् प्रत्येक सम्बुद्ध का स्तूप है'—(सोचकर) बहुत से लोग चित्त को प्रसन्न करेंगे। वे वहाॅ चित्त को प्रसन्न कर काया छूटने पर मरने के बाद सुगति को प्राप्त हो स्वर्ग-लोक मे उत्पन्न होंगे। इस प्रयोजन से आनन्द ! प्रत्येक सम्बुद्ध स्तूपार्ह है।

क्यों आनन्द ! तथागत का श्रावक स्तूपार्ह है ? 'यह उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध के श्रावक का स्तूप है'—(सोचकर) आनन्द ! बहुत से लोग चित्त प्रसन्न करेंगे। वे वहाँ चित्त प्रसन्न कर काया छूटने पर मरने के बाद सुगति को प्राप्त हो स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होंगे। इस प्रयोजन से आनन्द ! तथागत का श्रावक स्तूपार्ह है।

किसलिये आनद ! राजा चक्रवर्ती स्तूपार्ह है ? 'यह उस धार्मिक धर्मराजका स्तूप है' सोच आनद ! बहुतसे लोग चित्तको प्रसन्न करेंगे। वे वहाँ चित्त को प्रसन्न कर काया छूटने पर मरने के बाद सुगति को प्राप्त हो स्वर्ग लोक में उत्पन्न होंगे। इस प्रयोजन से आनन्द ! चक्रवर्ती राजा स्तूपार्ह है। आनद ! ये चार स्तूपार्ह हैं।

आनन्द में अद्भुत गुण

१३७ तब आयुष्मान् आनन्द विहारमें जाकर खूँटी को पकडकर रोते खड़े हुये—"हाय ! मै शैक्ष्य=सकरणीय हूँ, और जो मेरे अनुकपक शास्ता हैं, उनका परिनिर्वाण हो रहा ! !"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओंको आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ ! आनन्द कहाँ है ?"

"यह भन्ते! आयुष्मान् आनन्द विहार (= कोठरी) मे जाकर ूटी को पकडकर रोते हुए खडे हैं—"हाय! मै शैक्ष्य = सकरणीय हूँ ौर जो मेरे अनुकम्पक शास्ता है, उनका परिनिर्वाण हो रहा है।" तब गवान् ने किसी एक भिक्षुको आमन्त्रित किया—

"आ! भिक्षु! मेरे वचनसे तू आनन्दको कह—'आवुस आनन्द! ास्ता तुम्हें बुला रहे हैं।"

"अच्छा, भन्ते!" कह उस भिक्षु ने भगवान् को उत्तर दे, जहाँ ायुष्मान् आनन्द थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आमन्द से कहा— आवुस आनन्द! तुम्हें शास्ता बुला रहे है।"

"अच्छा, आवुस!" कह आयुष्मान् आनन्द उस भिक्षु को उत्तर े जहाँ भगवान् थे, वहाँ गए। जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठे।

१३८ एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् आनन्दसे भगवान्ने कहा—

"बस, आनन्द! मत शोक करो, मत रोओ। क्या आनन्द! मैंने पहले ही नहीं कह दिया है—सभी प्रियों, मनापोंसे जुदाई वियोग, अन्यथा-भाव होना है, सो वह आनन्द! कहाँ मिलनेवाला है, जो उत्पन्न, भूत, सस्कृत, नाशवान् है, 'हाय! वह तथागतका शरीर भी न नाश हो' यह सभव नहीं। आनन्द! तूने दीर्घरात्र (=चिरकाल) तक अप्रमाण हित-सुख चाहते हुए एक मनसे मैत्रीपूर्ण कायिककर्मसे तथागतकी सेवा की है। मैत्रीपूर्ण वाचिक कर्मसे । मैत्रीपूर्ण मानसिक कर्मसे ˙। आनन्द! तू कृतपुण्य है। प्रधान (=निर्वाण-साधन) में लग, जल्दी अनास्रव (=मुक्त) हो जा।"

१३९ तब भगवान्ने भिक्षुओंको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! जो भी तथागत अर्हत् सम्यक्-सबुद्ध अतीतकालमें थे, उन भगवानोंके भी उपस्थाक (=चिरसेवक) इतने ही उत्तम थे, जैसा कि मेरा

(उपस्थाक) आनन्द। भिक्षुओ! जो भी तथागत अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध भविष्य में होंगे, उन भगवानो के भी उपस्थाक इतने ही उत्तम होंगे, जैसा कि मेरा आनन्द। भिक्षुओ! आनन्द पंडित है। भिक्षुओ! आनन्द मेधावी है। वह जानता है—यह काल भिक्षुओंका तथागतके दर्शनार्थ जाने का है, यह काल भिक्षुणियोंका है, यह काल उपासकोंका है, यह काल उपासिकाओंका है। यह काल राजाका, राज-महामात्योंका, तैर्थिकोंका, तैर्थिक-श्रावकोंका है।

१४० "भिक्षुओ! आनन्दमें ये चार आश्चर्य, अद्भुत बातें (=धर्म) हैं। कौनसी चार? [१] यदि भिक्षु-परिषद् आनन्दका दर्शन करने जाती है, तो दर्शनसे सन्तुष्ट हो जाती है। वहाँ यदि आनन्द धर्मपर भाषण करता है, भाषणसे भी सन्तुष्ट हो जाती है। भिक्षुओ! भिक्षु परिषद् अ-तृप्त ही रहती है, जब कि आनन्द चुप हो जाता है। [२] यदि भिक्षुणी-परिषद्॰। [३] यदि उपासक परिषद्॰। [४] यदि उपासिका-परिषद्॰। भिक्षुओ! आनन्दमें ये चार आश्चर्य, अद्भुत बातें हैं।

चक्रवर्ती के अद्भुत गुण

१४१ "भिक्षुओ! चक्रवर्ती राजामें ये चार आश्चर्य, अद्भुत बातें हैं। कौनसी चार? [१] यदि भिक्षुओ! क्षत्रिय परिषद् चक्रवर्ती राजा-

का दर्शन करने जाती है, तो दर्शनसे सन्तुष्ट हो जाती है। वहाँ यदि चक्रवर्ती राजा भाषण करता है, तो भाषणसे सन्तुष्ट हो जाती है, और भिक्षुओ! क्षत्रिय परिषद् अतृप्त ही रहती है, जब कि चक्रवर्ती राजा चुप हो जाता है। [२] यदि ब्राह्मण परिषद् ˚। [३] यदि गृहपति परिषद् ˚। [४] यदि श्रमण-परिषद् ˚। इसी प्रकार भिक्षुओ! ये चार आश्चर्य, अद्भुत बातें आनन्दमें हैं। [१] यदि भिक्षु-परिषद् आनन्द का दर्शन करने जाती है, तो दर्शन से सन्तुष्ट हो जाती है। वहाँ यदि आनन्द धर्म पर भाषण करता है, भाषण से भी सन्तुष्ट हो जाती है। भिक्षुओ! भिक्षु-परिषद् अतृप्त ही रहती है, जब कि आनन्द चुप हो जाता है। [२] यदि भिक्षुणी-परिषद् । [३] यदि उपासक-परिषद् । [४] यदि उपासिका-परिषद् । भिक्षुओ! ये चार आश्चर्य, अद्भुत बातें आनन्दमें हैं।'

१४२. ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! मत इस क्षुद्र नगले (=नगरक) में, जंगली नगलेमें, शाखा-नगरकमें परिनिर्वाणको प्राप्त होवें। भन्ते! और भी महानगर हैं, जैसे कि चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी। यहाँ भगवान् परिनिर्वाणको प्राप्त हों। यहाँ बहुतसे क्षत्रिय-महाशाल (=महाधनी), ब्राह्मण महाशाल, गृहपति महाशाल तथागतके भक्त हैं, वे तथागतके शरीरकी पूजा करेंगे।"

महासुदर्शनजातक

१४३ "मत आनन्द! ऐसा कह, मत आनन्द! ऐसा कह—'क्षुद्र-नगरक, जंगली-नगरक, शाखा-नगरक।' आनन्द! पूर्वकालमें महा-सुदर्शन नामक चारों दिशाओंका विजेता, देशोंपर अधिकार प्राप्त, सात रत्नोंसे युक्त धार्मिक धर्मराजा चक्रवर्ती राजा था। आनन्द! यह कुशीनारा राजा महासुदर्शनकी कुशावती नामक राजधानी थी। जो कि पूर्व-पश्चिम लम्बाईमें बारह योजन थी, उत्तर-दक्षिण विस्तारमें सात योजन थी। आनन्द! कुशावती राजधानी समृद्ध, स्फीत, बहुत लोगोंसे भरी हुई (= सघन बसी) और सुभिक्ष थी। जैसे कि आनन्द! देवताओंकी आलकमदा नामक राजधानी समृद्ध, स्फीत, बहुत यक्षोंसे भरी हुई और सुभिक्ष है, इसी प्रकार । आनन्द! कुशावती राजधानी दिन-रात हस्ति शब्द, अश्व शब्द, रथ शब्द, भेरी शब्द, मृदंग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत शब्द, शंख शब्द, ताल शब्द, 'खाइये-पीजिये'—इन दस शब्दोंसे शून्य न होती थी।

१४४ आनन्द! तुम कुशीनारामें जाकर कुशीनारावासी मल्लोंको कह—"वाशिष्ठो! आज रातके पिछले पहर तथागतका परिनिर्वाण होगा। चलो वाशिष्ठो! चलो वाशिष्ठो! पीछे अफसोस मत करना—'हमारे ग्राम-क्षेत्रमें तथागतका परिनिर्वाण हुआ, लेकिन हम अन्तिमकालमें तथागतका दर्शन न कर पाये'।"

महासुदर्शनजातक

१४३. "मत आनन्द! ऐसा कह, मत आनन्द! ऐसा कह—'क्षुद्र-नगरक, जगली-नगरक, शाखा-नगरक।' आनन्द! पूर्वकालमे महा-सुदर्शन नामक चारों दिशाओंका विजेता, देशोंपर अधिकार प्राप्त, सात रत्नोंसे युक्त धार्मिक धर्मराजा चक्रवर्ती राजा था। आनन्द! यह कुशीनारा राजा महासुदर्शनकी कुशावती नामक राजधानी थी। जो कि पूर्व-पश्चिम लम्बाईमें बारह योजन थी, उत्तर-दक्षिण विस्तारमें सात योजन थी। आनन्द! कुशावती राजधानी समृद्ध, स्फीत, बहुत लोगोंसे भरी हुई (= सघन बसी) और सुभिक्ष थी। जैसे कि आनन्द! देवताओंकी आलकमदा नामक राजधानी समृद्ध, स्फीत, बहुत यक्षोंसे भरी हुई और सुभिक्ष है, इसी प्रकार। आनन्द! कुशावती राजधानी दिन रात हस्ति शब्द, अश्व-शब्द, रथ-शब्द, भेरी शब्द, मृदग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत-शब्द, शख शब्द, ताल शब्द, 'खाइये-पीजिये'—इन दस शब्दोसे शून्य न होती थी।

१४४ आनन्द! तुम कुशीनारामे जाकर कुशीनारावासी मल्लोंको कह—"वाशिष्ठो! आज रातके पिछले पहर तथागतका परिनिर्वाण होगा। चलो वाशिष्ठो! चलो वाशिष्ठो! पीछे अफसोस मत करना—'हमारे ग्राम-क्षेत्रमें तथागतका परिनिर्वाण हुआ, लेकिन हम अन्तिमकालमें तथागतका दर्शन न कर पाये'।"

"अच्छा भन्ते!" कह आयुष्मान् आनन्द भगवान् को उत्तर दे चीवर पहनकर, पात्रचीवर ले, एक भिक्षुके साथ कुशीनारामें प्रविष्ट हुए।

१४५ उस समय कुशीनारावासी मल्ल किसी कामसे सस्थागारमें जमा हुए थे। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ कुशीनाराके मल्लोंका सस्थागार था, वहाँ गये। जाकर कुशीनारावासी मल्लोंसे यह बोले—'वाशिष्ठो! आज रात के पिछले पहर में तथागत का परिनिर्वाण होगा''।

१४६. अयुष्मान् आनन्दसे यह सुनकर मल्ल, मल्ल-पुत्र, मल्ल-वधुयें, मल्ल-भार्यायें दुःखी, दुर्मना, दुःख समर्पित-चित्त हो, कोई कोई बालोंको बिखेर कर रोते थे, बाँह उठाकर क्रदन करते थे, कटे (वृक्ष) की भाँति गिरते थे, (भूमिपर) लोटते पोटते थे—'बहुत जल्दी भगवान् निर्वाण प्राप्त होंगे, बहुत जल्दी सुगत निर्वाण प्राप्त होंगे। बहुत जल्दी चक्षुष्मान् का लोक में अन्तर्धान हो जायेगा।'

१४७ तब मल्ल दुःखित हो, जहाँ उपवत्तन मल्लोंका शालवन था, वहाँ गये।

तब आयुष्मान् आनन्दको यह हुआ—'यदि मैं कुशीनाराके मल्लोंको एक-एक कर भगवान्की वन्दना करवाऊँगा, तो भगवान् (सभी) कुशीनारा के मल्लों से अवन्दित ही होंगे, और यह रात बीत जायेगी। क्यों न मैं कुशीनारा के मल्लों को एक एक कुल के क्रम से भगवान् की वन्दना करवाऊँ—

'भन्ते! अमुक नामका मल्ल स-पुत्र, स-भार्या, स परिषद्, स-अमात्य भगवान् के चरणों को सिर से वन्दना करता है।'

तब आयुष्मान् आनन्द ने कुशीनारा के मल्लों को एक-एक कुल के क्रम से भगवान् की वन्दना करवाई— ।

इस उपाय से आयुष्मान् आनन्द ने, प्रथम याम (= छः से दस बजे राततक) मे कुशीनारा के मल्लों से भगवान् की वन्दना करवा दी ।

सुभद्र की प्रव्रज्या

१४८ उस समय कुशीनारा में सुभद्र नामक परिव्राजक वास करता था। सुभद्र परिव्राजक ने सुना, आज रातको पिछले पहर में श्रमण गौतम का परिनिर्वाण होगा । तब सुभद्र परिव्राजक को ऐसा हुआ—"मैंने वृद्ध= महल्लक आचार्य प्राचार्य परिव्राजकों को यह कहते सुना है—कदाचित् कभी ही तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध उत्पन्न हुआ करते हैं । और आज रात को पिछले पहर श्रमण गौतमका परिनिर्वाण होगा, और मुझे यह संशय उत्पन्न है,"'इस प्रकार मैं श्रमण गौतम में प्रसन्न (=श्रद्धावान्)हूँ —श्रमण गौतम मुझे वैसा, धर्म उपदेश कर सकता है, जिससे मेरा यह संशय हट जायेगा ।"

१४९. तब सुभद्र परिव्राजक जहाँ मल्लों का शालवन उपवत्तन था, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया । जाकर आयुष्मान् आनन्द से

बोला—"हे आनन्द ! मैंने वृद्ध=महल्लक·· परिव्राजकों को यह कहते सुना है···। सो मैं · श्रमण गौतम का दर्शन पाऊँ ?"

१५० ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द ने सुभद्र परिव्राजक से कहा—

"नहीं आवुस सुभद्र ! तथागतको तकलीफ मत दो। भगवान् थके हुए हैं।"

दूसरी बार भी सुभद्र परिव्राक ने ·। ·। तीसरी बार भी ··।··।

१५१ भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द का सुभद्र परिव्राजक के साथ का कथा-सलाप सुन लिया। तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—

"नहीं आनन्द ! मत सुभद्र को मना करो। सुभद्र को तथागत का दर्शन पाने दो। जो कुछ सुभद्र, पूछेगा, वह आज्ञा (= परम-ज्ञान) की इच्छा से ही पूछेगा, तकलीफ देने की इच्छा से नहीं। पूछने पर जो मैं उसे कहूँगा, उसे वह जल्दी ही जान लेगा।"

तब आयुष्मान् आनन्द ने सुभद्र परिव्राजक से कहा—

"जाओ आवुस सुभद्र ! भगवान् तुम्हें आज्ञा देते हैं।"

१५२. तब सुभद्र परिव्राजक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान् के साथ समोदनकर · एक ओर बैठा। एक ओर बैठ' 'बोला—

"हे गौतम ! जो श्रमण-ब्राह्मण संघी, गणी = गणाचार्य, सुप्रसिद्ध यशस्वी तीर्थंकर, बहुत लोगों द्वारा उत्तम माने जानेवाले हैं, जैसे कि— पूर्ण कस्यप, मक्खलि गोसाल, अजित केशकम्बल, प्रकुध कच्चायन, सजय बेलट्ठिपुत्त, निगण्ठ नाथपुत्त। (क्या) वे सभी अपने दावा (= प्रतिज्ञा) को (वैसा) जानते, या सभी नहीं जानते, या कोई कोई वैसा जानते, कोई कोई वैसा नहीं जानते।"

१५३. "बस, सुभद्र! जाने दो—'वे सभी अपने दावा को . । सुभद्र ! तुम्हें धर्म ··उपदेश करता हूँ उसे सुनो, अच्छी तरह मन में करो, भाषण करता हूँ।"

"अच्छा भन्ते !" सुभद्र परिव्राजक ने भगवान् से कहा।

१५४. भगवान् ने यह कहा—

"सुभद्र ! जिस धर्म विनय मे आर्य अष्टागिक मार्ग उपलब्ध नही होता, वहाँ प्रथम श्रमण (= स्रोतापन्न) भी उपलब्ध नहीं होता, द्वितीय श्रमण (= सकृदागामी) भी उपलब्ध नहीं होता, तृतीय श्रमण (= अनागामी) भी उपलब्ध नहीं होता, चतुर्थ श्रमण (= अर्हत्) भी उपलब्ध नहीं होता। सुभद्र ! जिस धर्म-विनय में आर्य अष्टागिक-मार्ग उपलब्ध होता है, ··प्रथम श्रमण भी वहाँ उपलब्ध होता है ·। द्वितीय ·तृतीय · चतुर्थ श्रमण भी वहाँ उपलब्ध होता है। सुभद्र ! इस धर्म-विनय में आर्य अष्टांगिक-मार्ग उपलब्ध होता है, सुभद्र ! यहाँ प्रथम श्रमण·· भी, यहाँ · द्वितीय श्रमण भी, यहाँ · तृतीय श्रमण भी, यहाँ चतुर्थ श्रमण भी है। दूसरे वाद (=मत) श्रमणों से शून्य हैं। सुभद्र ! (यदि) ये भिक्षु ठीक से विहार करें (तो) लोक अर्हतों से शून्य न होवे।"

"सुभद्र ! उन्तीस वर्ष की अवस्था में,
कुशल (=पुण्यधर्म) का खोजी हो,
जो मैं प्रव्रजित हुआ।
सुभद्र ! जब मैं प्रव्रजित हुआ तबसे इक्कावन वर्ष हुए,
न्याय धर्म (=आर्य धर्म=सत्यधर्म) के एक देश को भी,
देखनेवाला यहाँ से श्रमण भी कोई नहीं है।

द्वितीय श्रमण भी नहीं है, तृतीय चतुर्थ श्रमण भी नहीं है। दूसरे वाद श्रमणों से शून्य हैं। सुभद्र ! यदि ये भिक्षु ठीक से विहार करें, तो लोक अर्हतों से शून्य न होवे।"

१५५. ऐसा कहने पर सुभद्र परिव्राजक ने भगवान् से यह कहा—

"आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! जैसे भन्ते ! उल्टे को सीधा कर दे या ढँके को उघाड दे या भूले को मार्ग बतला दे या अन्धकार में तेल का दीपक धारण कर ले, जिससे कि आँखवाले रूपों को देख लें, ऐसे ही भगवान् ने अनेक प्रकार से धर्मको प्रकाशित किया। भन्ते ! यह यह मैं भन्ते ! भगवान् की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-संघ की भी। भन्ते ! मुझे भगवान् के पास से प्रव्रज्या मिले, उपसंपदा मिले।"

"सुभद्र ! जो कोई भूतपूर्व अन्य तीर्थिक (=दूसरे पंथ का) इस धर्म-विनय में प्रव्रज्या चाहता है, उपसंपदा चाहता है, वह चार मास परिवास (=परीक्षार्थ वास) करता है। चार मास के बाद, आरब्ध-चित्त भिक्षु प्रव्रजित करते हैं, भिक्षु होने के लिये उपसंपन्न करते हैं, किन्तु यहाँ मुझे व्यक्ति की विभिन्नता ज्ञात है।"

१५६ "भन्ते ! यदि भूतपूर्व अन्यतीर्थिक इस धर्मविनय में प्रव्रज्या उपसंपदा चाहने वाले, चार मास परिवास करते हैं, चार मास के बाद प्रसन्न-चित्त भिक्षु प्रव्रजित करते हैं, भिक्षु होने के लिए उपसम्पन्न करते

हैं तो भन्ते ! मैं चार वर्ष परिवास करूँगा। चार वर्षों के बाद आरब्ध-चित्त भिक्षु मुझे प्रव्रजित करें, भिक्षु होने के लिए उपसम्पन्न करें।"

१५७. तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—"तो आनन्द ! सुभद्र को प्रव्रजित करो।"

"अच्छा भन्ते !" कह आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् को उत्तर दिया।

तब सुभद्र परिव्राजक ने आयुष्मान् आनन्द से यह कहा—

"आवुस, आनन्द ! लाभ है तुम्हें, सुलाभ हुआ तुम्हें, जो यहाँ शास्ता के सम्मुख अन्तेवासी (= शिष्य) के अभिषेक से अभिषिक्त हुए।"

१५८ सुभद्र परिव्राजक ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पाई, उपसपदा पाई। उपसपन्न होने के कुछ समय बाद ही में आयुष्मान् सुभद्र, एकान्त-वासी, अप्रमादी, उद्योगी, आत्मसयमी हो विहार करते, जल्दी ही, जिसके लिये कुलपुत्र भली प्रकार घरबार छोडकर प्रव्रजित होते हैं, उस अनुत्तर ब्रह्मचर्य-फल को इसी जन्म में स्वय जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर, विहरने लगे। 'जन्म क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्य वास पूर्ण हो गया, करणीय कर लिया गया, यहाँ के लिए दूसरा कुछ नहीं है'—ऐसा जान लिया। आयुष्मान् सुभद्र अर्हतों में से एक हुए। वह भगवान् के अन्तिम साक्षी-शिष्य हुए।

पाँचवाँ भाणवार समाप्त।

---

[६]

तथागत के अन्तिम वचन

१५९. तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया—

"आनन्द ! शायद तुमलोगोंको ऐसा हो—[१] अतीत-शास्ता (=चलेगये गुरु) का (यह) प्रवचन (=उपदेश) है, (अब) हमारा शास्ता नहीं है। आनन्द ! इसे ऐसा मत समझना। मैंने जो धर्म और विनय उपदेश किये हैं, प्रज्ञप्त (= विहित) किये हैं, मेरे बाद वही तुम्हारा शास्ता (= गुरु) है। [२] आनन्द ! जैसे आजकल भिक्षु एक दूसरे को 'आवुस' कहकर पुकारते हैं, मेरे बाद ऐसा कहकर न पुकारें। आनन्द ! स्थविर (= उपसपदा प्रव्रज्या में अधिक दिन का) भिक्षु नवकतर (= अपने से कम समय के) भिक्षु को नाम से, या गोत्र से, या आवुस कह कर पुकारे। नवकतर भिक्षु स्थविरतर को 'भन्ते' या 'आयुष्मान्' कह कर पुकारें। [३] इच्छा होने पर सघ मेरे बाद क्षुद्र-अनुक्षुद्र (=छोटे छोटे) शिक्षापदों (=भिक्षु-नियमों) को छोड दे। [४] आनन्द ! मेरे बाद छन्द भिक्षु को ब्रह्मदण्ड देना चाहिये।"

१६० "भन्ते ! ब्रह्मदण्ड क्या है ?"

"आनन्द ! छन्द भिक्षु जो चाहे, सो कहे, भिक्षुओं को उससे न बोलना चाहिये, न उपदेश, अनुशासन करना चाहिये।"

१६१ तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ ! (यदि) बुद्ध, धर्म, सघ, मार्ग या प्रतिपदा में एक भिक्षु को भी कुछ शका या दुविधा हो, (तो) पूछ लो। भिक्षुओ ! पीछे अफसोस मत करना—'शास्ता हमारे सन्मुख थे, (किन्तु) हम भगवान् के सामने पूछ न सके।"

ऐसा कहने पर वे भिक्षु चुप रहे। दूसरी वार भी भगवान् ने ''। ''। तीसरी वार भी'''। ''तव भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—'हो सकता है कि भिक्षुओ ! शास्ता के गौरव से भी न पूछते हो, तो भिक्षुओ ! सहायक भी सहायक (= मित्र) से कहे।' ऐसा कहने पर वे भिक्षु चुप रहे।

१६२. तव आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह कहा—"आश्चर्य भन्ते! अद्भुत भन्ते!! मैं भन्ते! इस भिक्षु-सघ मे ऐसा प्रसन्न हूँ, (यहाँ) एक भिक्षु को भी बुद्ध, धर्म, सघ, मार्ग, या प्रतिपद् के विषय मे सन्देह (=काक्षा) या विमति (= दुविधा) नहीं है।"

"आनन्द ! तू 'प्रसन्न हूँ' कह रहा है! आनन्द ! तथागत को मालूम है—इस भिक्षु सघ में एक भिक्षु को भी बुद्ध, धर्म, सघ, मार्ग या प्रतिपदा के विषय में सन्देह या विमति नहीं है। आनन्द! इन पाँच सौ भिक्षुओं में जो सबसे छोटा भिक्षु है, वह भी न गिरने वाला हो, नियत सम्बोधि-परायण है।"

१६३ तव भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—"हन्त ! भिक्षुओ ! अब तुम्हें कहता हूँ—सस्कार (=कृतवस्तु) व्यय-धर्मा (=नाशवान्) हैं, अप्रमाद के साथ (=आलस न कर) (जीवन के लक्ष्य को) सपादन करो।"

—यह तथागत का अन्तिम वचन है।

महापरिनिर्वाण

१६४ तव भगवान् प्रथम ध्यान को प्राप्त हुए। प्रथम ध्यान से

उठ कर द्वितीय ध्यान को प्राप्त हुए। ''तृतीय ध्यान को ''। ' चतुर्थ ध्यान को '। आकाशानन्त्यायतन को । आकिंचन्यायतन को । नैवसज्ञानासज्ञायतन को । '' सज्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त हुए।

तब आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् अनुरुद्ध से कहा—"भन्ते अनुरुद्ध! क्या भगवान् परिनिर्वृत हो गये?"

"आवुस आनन्द! भगवान् परिनिर्वृत नहीं हुए। सज्ञावेदयितनिरोध को प्राप्त हुए हैं।"

१६५. तब भगवान् सज्ञावेदयितनिरोध समापत्ति (= चारों ध्यानो के ऊपर की समाधि) से उठ कर नैवसज्ञानासज्ञायतन को प्राप्त हुए। । द्वितीय ध्यान से उठ कर प्रथम ध्यान को प्राप्त हुए।' '। चतुर्थ ध्यान से उठने के अनन्तर भगवान् परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।

१६६ भगवान् के परिनिर्वाण होने पर, निर्वाण होने के साथ भीषण,

लोमहर्षण कर देनेवाला महाभूचाल हुआ। देव-दुन्दुभियाँ बजीं (=बादल गरज उठे)। भगवान् के परिनिर्वाण होने पर परिनिर्वाण होने के साथ सहम्पति ब्रह्मा ने यह गाथा कही—

"संसार के सभी प्राणी जीवन से गिरेंगे।
जब कि ऐसे लोक में अद्वितीय पुरुष, बल प्राप्त,
तथागत, शास्ता बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।"

भगवान् के परिनिर्वाण होने पर देवेन्द्र शक्र ने यह गाथा कही—

"अरे! संस्कार (= उत्पन्न वस्तुएँ) उत्पन्न और नष्ट होने वाले हैं।
(जो) उत्पन्न हो कर नष्ट होते हैं, उनका शान्त होना ही सुख है।"

भगवान् के परिनिर्वाण होने पर आयुष्मान् अनुरुद्ध ने यह गाथा कही—

"स्थिर-चित्त तथागत को (अब) श्वास-प्रश्वास नहीं रहा।
शान्ति के लिए निष्कम्प हो मुनि ने काल किया।"

भगवान् के परिनिर्वाण होने पर आयुष्मान् आनन्द ने यह गाथा कही—

"जब सर्वश्रेष्ठ आकार से युक्त सम्बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुए,
तो उस समय भीषणता हुई, उस समय रोमाञ्च हुआ।"

१६७ भगवान् के परिनिर्वाण हो जाने पर, जो वहाँ अवीत-राग (= अ-विरागी) भिक्षु थे, (उनमें) कोई बाँह उठा कर क्रन्दन करते थे, कटे (वृक्ष) के सदृश गिरते थे, (धरती पर) लोटते-पोटते थे—'भगवान् बहुत जल्दी परिनिर्वृत्त हो गये'। किन्तु जो वीतराग भिक्षु थे, वे स्मृति और सम्प्रजन्य के साथ स्वीकार (=सहन) करते थे—'संस्कार अनित्य हैं, सो कहाँ मिलेगा?'

१६८ तब आयुष्मान् अनुरुद्ध ने भिक्षुओं से कहा—

"नहीं आवुसो ! शोक मत करो, रोदन मत करो। भगवान् ने तो आवुसो ! यह पहले ही कह दिया है—'सभी प्रियों, मनापों से जुदाई वियोग, अन्यथाभाव होना है सो वह आवुसो ! कहाँ मिलनेवाला है, जो उत्पन्न, संस्कृत, नाशवान् है, 'हाय ! वह मत नाश हो' यह सम्भव नहीं। आवुसो ! देवता झुनसा रहे हैं।"

"भन्ते, अनुरुद्ध ! देवताओं के मन में कैसा है ?

"आवुस आनन्द ! देवता आकाश को पृथ्वी ख्याल कर बाल खोले रो रहे हैं। हाथ उठा कर चिल्ला रहे हैं। कटे (वृक्ष) की भाँति भूमि पर गिर रहे हैं। (यह कहते) लोट-पोट रहे हैं—बहुत जल्दी भगवान् परि-निर्वाण को प्राप्त हो गये। बहुत शीघ्र सुगत परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। बहुत शीघ्र चक्षुष्मान (= बुद्ध) लोक में अन्तर्धान हो गये। ° । और जो देवता होश चेतवाले हैं—वह होश-चेत (स्मृति और सम्प्रजन्य) के साथ सह रहे हैं—'संस्कृत (=कृत वस्तुएँ) अनित्य हैं, सो कहाँ मिल सकता ?"

१६९. तब आयुष्मान् अनुरुद्ध और आयुष्मान् आनन्द ने वह शेष रात धर्म-कथा में बिताई। तब आयुष्मान् अनुरुद्ध ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—

"जाओ ! आवुस आनन्द ! कुशीनारा में जाकर, कुशीनारा के मल्लों से कहो—'वाशिष्ठो ! भगवान् परिनिर्वृत्त हो गये। अब जिसका तुम काल समझो (वह करो)।"

"अच्छा भन्ते !" कह . आयुष्मान् आनन्द पहन कर पात्र-चीवर ले, एक दूसरे भिक्षु के साथ कुशीनारा मे प्रविष्ट हुए। उस समय उसी काम से कुशीनारा के मल्ल सस्थागार (=प्रजातन्त्र-सभा-भवन) में जमा थे। तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ मल्लों का सस्थागार था, वहाँ गये। जाकर कुशीनारा के मल्लों से बोले—

"वाशिष्टो ! भगवान् परिनिर्वृत्त हो गये, अव जिसका तुम काल समझो (वैसा करो)।"

आयुष्मान् आनन्द से यह सुन कर मल्ल, मल्ल पुत्र, मल्ल-वधुये, मल्ल-भार्यायें दुखित हो ' कोई केशों को बिखेर कर क्रन्दन करती थीं, दुर्मना चित्त में सतप्त हो कोई-कोई केशों को बिखेर कर रोती थी, बाँह उठा कर रोती थीं, कटे (वृक्ष) की भाँति गिरती थीं, (धरती पर) लुठित-विलुठित होती थीं—"बडी जल्दी भगवान् का परिनिर्वाण हुआ, बडी जल्दी सुगत का परिनिर्वाण हुआ, बडी जल्दी चक्षुष्मान् लोक में अन्तर्धान हो गये।"

१७० तब कुशीनारा के मल्लों ने पुरुषों को आज्ञा दी—"तो भणे ! कुशीनारा का सभी गध-माला और सभी वाद्यों को जमा करो।"

तब कुशीनारा के मल्ल गध-माला, सभी वाद्यों, और पॉच सौ जोड़े वस्त्रों को लेकर जहाँ उपवत्तन मल्लों का शालवन था, जहॉ भगवान् का शरीर था, वहाँ गये। जाकर उन्होंने भगवान् के शरीर को नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गध से सत्कार करते, गुरुकार करते, मानते पूजते कपड़े का वितान (=चँदवा) करते, मण्डप बनाते उस दिन को बिता दिया।

तब कुशीनारा के मल्लों को हुआ—भगवान् के शरीर के दाह करने का आज बहुत विकाल हो गया। अब कल भगवान् के शरीर का दाह करेंगे।'

तब कुशीनारा के मल्लों ने भगवान् के शरीर को नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गध से सत्कार करते गुरुकार करते मानते पूजते, चँदवा तानते, मण्डप बनाते दूसरा दिन भी बिता दिया। तीसरा दिन भी । चौथा दिन भी । पाँचवाँ दिन भी । छठॉ दिन भी ।

१७१. तब सातवें दिन कुशीनारा के मल्लों को यह हुआ—'हम भगवान् के शरीर को नृत्य गध से सत्कार करते नगर के दक्षिण से ले-जाकर बाहर से बाहर नगर के दक्षिण भगवान् के शरीर का दाह करें। उस समय मल्लों के आठ प्रमुख (= मुखिया) सिर से नहा कर, नये वस्त्र पहन, भगवान् के शरीर को उठाना चाहते थे, लेकिन वे नहीं उठा पाते थे।

१७२. तब कुशीनारा के मल्लों ने आयुष्मान् अनरुद्ध से पूछा—"भन्ते ! अनरुद्ध ! क्या हेतु है, क्या कारण है, जो कि हम आठ मल्ल-प्रमुख नहीं उठा सकते ?"

"वाशिष्टो ! तुम्हारा अभिप्राय दूसरा है, और देवताओं का अभिप्राय दूसरा है।"

"भन्ते ! देवताओं का अभिप्राय क्या है ?"

"वाशिष्टो ! तुम्हारा अभिप्राय है, हम भगवान् के शरीर को नृत्य से सत्कार करते ''नगर के दक्षिण दक्षिण ले जाकर, बाहर से बाहर नगर के दक्षिण, भगवान के शरीर का दाह करें।

देवताओं का अभिप्राय है—हम भगवान् के शरीर को दिव्य नृत्य से सत्कार करते ''नगर के उत्तर उत्तर ले जाकर, उत्तर-द्वार से नगर में प्रवेश कर, नगर के बीच ले जा, पूर्व-द्वार से निकल नगर के पूर्व ओर (जहाँ) मुकुट बधन' नामक मल्लों का चैत्य (= देवस्थान) है, वहाँ भगवान् के शरीर का दाह करें।"

"भन्ते ! जैसा देवताओं का अभिप्राय है, वैसा ही हो।"

१७३ उस समय कुशीनारा में जाँघ भर मन्दारव-पुष्प (=एक दिव्य पुष्प) बरसे हुए थे।

---

१ रामाभार, कुशीनगर से १ मील पूरब, जिला देवरिया।

तब देवताओ और कुशीनारा के मल्लो ने भगवान् के शरीर को दिव्य और मानुष नृत्य * के साथ सत्कार करते नगर से उत्तर उत्तर से ले जाकर उत्तर द्वार से नगर में प्रवेशकर नगर के बीच ले जा, पूर्व द्वार से निकल नगर के पूर्व ओर (जहाँ) मुकुट-बधन नामक मल्लों का चैत्य है, वहाँ भगवान् का शरीर रखा।

१७४ तब कुशीनारा के मल्लों ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—"भन्ते! आनन्द! हम तथागत के शरीर को कैसे करें?"

"वाशिष्टो! जैसे चक्रवर्ती राजा के शरीर को करते है, वैसे ही तथागत के शरीर को करना चाहिये।"

"कैसे भन्ते! चक्रवर्ती राजा के शरीर को करते है?"

"वाशिष्टो! चक्रवर्ती राजा के शरीर को नये वस्त्र से लपेटते है। नये वस्त्र से लपेट कर धुनी हुई रूई से लपेटते हैं। धुनी हुई रूई से लपेट कर नये वस्त्र से लपेटते हैं। इस प्रकार पॉच सौ जोडों से चक्रवर्ती राजा के शरीर को लपेट कर तेल की लौहद्रोणी (=दोन) में रखकर, दूसरी लौह-द्रोणी से ढॉककर सभी गन्धों (वाले काष्ठ) की चिता बनाकर, राजा चक्रवर्ती के शरीर को जलाते हैं। (जलाकर) बड़े चौरस्ते पर राजाचक्रवर्ती का स्तूप बनाते हैं। ऐसे वाशिष्टो! चक्रवर्ती राजा के शरीर के प्रति करते हैं। जैसे वाशिष्टो! चक्रवर्ती राजा के शरीर के प्रति करते हैं, वैसे तथागत के शरीर के प्रति करना चाहिए। बड़े चौरस्तेपर तथागत का स्तूप बनाना चाहिये। वहाँ जो माला, गध या चूर्ण चढायेंगे, या अभिवादन करेंगे, या चित्त को प्रसन्न करेंगे, उनके लिए वह चिरकाल तक हित-सुखके लिये होगा।"

१७५. तब कुशीनारा के मल्लो ने आदमियों को आज्ञा दी—"जाओ रे! धुनी रुई को एकत्रित करो।

तब कुशीनारा के मल्लों ने भगवान् के शरीर को कोरे वस्त्र में लपेटा। कोरे वस्त्र में लपेट कर धुनी हुई रूई से लपेटा। धुनी हुई रूईसे लपेट कर, कोरे वस्त्र में लपेटा। इसी प्रकार पाँच सौ जोड़े में लपेट कर लोहे की तेलवाली द्रोणी में रख सारे गध (काष्ठों) की चिता बना कर, भगवान् के शरीर को चिता पर रखा।

महाकाश्यप द्वारा वन्दना

१७६. उस समय आयुष्मान् महाकाश्यप पाँच सौ भिक्षुओ के महा-भिक्षुसघ के साथ पावा और कुशीनारा के बीच में, रास्ते पर जा रहे थे। तब आयुष्मान् महाकाश्यप मार्ग से हट कर एक वृक्ष के नीचे बैठे। उस समय एक आजीवक कुशीनारा से मन्दारव का पुष्प ले पावा के रास्ते पर जा रहा था। आयुष्मान् महाकाश्यप ने उस आजीवक को दूर से आते देखा। देख कर उस आजीवक से यह कहा—

"आवुस! क्या हमारे शास्ता को जानते हो?"

"हाँ, आवुस! जानता हूँ, श्रमण गौतम को परिनिर्वृत्त हुए आज एक सप्ताह हो गया। मैंने यह मन्दारव-पुष्प वहीं से पाया।"

१७७. यह सुन वहाँ जो अवीतराग भिक्षु थे, (उनमें) कोई कोई बाँह उठा कर रोते थे, कटे वृक्ष की भाँति गिरते थे। लोटते पोटते थे—'अति शीघ्र भगवान् परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए। अतिशीघ्र सुगत परिनिर्वाण को प्राप्त हो गए। अति शीघ्र चक्षुष्मान् लोक में अन्तर्धान हो गए।' किन्तु जो भिक्षु वीतराग थे, वे स्मृति और सम्प्रजन्य से सह रहे थे—'सस्कार अनित्य हैं, वह कहाँ से मिल सकता है!'

उस समय सुभद्र नामक (एक) वृद्ध प्रव्रजित (= बुढ़ापे में साधु हुआ) उस परिषद् में बैठा था। तब वृद्ध-प्रव्रजित सुभद्र ने उन भिक्षुओं से यह कहा—"मत आवुसो! मत शोक करो, मत रोओ। हम सुमुक्त हो गये। उस महाश्रमण से पीड़ित रहा करते थे—'यह तुम्हें विहित है, यह तुम्हें विहित नहीं है।' अब हम जो चाहेंगे, सो करेंगे, जो नहीं चाहेंगे, सो नहीं करेंगे।"

१७८. तब आयुष्मान् महाकश्यपने भिक्षुओं को आमंत्रित किया—"आवुसो! मत शोक करो, मत रोओ। आवुसो! भगवान् ने तो यह पहले ही कह दिया है—सभी प्रियों, मनापों से जुदाई-वियोग, अन्यथाभाव होनी है, सो वह आवुसो! कहाँ मिलने वाला है? जो जात (= उत्पन्न), भूत, संस्कृत, नाशवान् है, 'हाय! वह तथागत का शरीर भी नाश मत हो'—सम्भव नहीं।"

१७९. उस समय चार मल्ल प्रमुख सिर से नहा कर, नये वस्त्र पहन, भगवान् की चिता को आग देना चाहते थे, किन्तु नहीं दे सकते थे। तब कुशीनारा के मल्लों ने आयुष्मान् अनुरुद्धसे पूछा—"भन्ते अनुरुद्ध! क्या हेतु, क्या प्रत्यय है, जिससे कि चार मल्ल-प्रमुख आग नहीं दे सकते हैं।"

"वाशिष्टो! देवताओंका दूसरा ही अभिप्राय है।"

"भन्ते! देवताओंका अभिप्राय क्या है?"

"वाशिष्टो! देवताओं का अभिप्राय है—'आयुष्मान् महाकाश्यप पाँच सौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ पावा और कुशीनाराके बीच रास्ते में आ रहे हैं। भगवान्की चिता तबतक न जलेगी, जबतक आयुष्मान् महाकाश्यप भगवान्के चरणोंको सिरसे वन्दना न कर लेंगे।"

"भन्ते! जैसा देवताओंका अभिप्राय है, वैसा ही हो।"

१८०. तब आयुष्मान् महाकाश्यपने जहाँ मल्लोंका मुकुटबन्धन नामक चैत्य था, जहाँ भगवान्‌की चिता थी, वहाँ पहुँचकर, चीवरको एक कन्धेपर कर अञ्जली जोड, तीन बार चिताकी परिक्रमा कर, भगवान् के चरणों में सिरसे वन्दना की। उन पाँच सौ भिक्षुओंने भी एक कन्धेपर चीवर कर, हाथ जोड तीन बार चिताकी प्रदक्षिणा कर, भगवान्‌के चरणोंमें सिरसे वन्दना की। आयुष्मान् महाकाश्यप और उन पाँच सौ भिक्षुओंके वन्दना कर लेते ही, भगवान्‌की चिता स्वय जल उठी।

१८१ जलते हुए भगवान्‌के शरीरमें जो छवि(=झिल्ली)या चर्म, मास, नस,या लसिका थी उनकी न राख जान पडी, न कोयला, केवल अस्थियाँ ही शेष रह गयीं, जैसे कि जलते हुए घी या तेलकी न राख (=छारिका) जान पडती है, न कोयला (=मसी), ऐसे ही भगवान् के शरीर के जलते हुए जो छवि या चर्म, मास, नस या लसिका थी, उनकी न राख जान पडी, न कोयला, केवल अस्थियाँ ही शेष रह गयीं। उन पाँच सौ जोड़े वस्त्रों में दो ही वस्त्र नहीं जले जो कि सबसे भीतर था और जो बाहर था। भगवान्‌के शरीर दग्ध हो जाने पर आकाश से जल-धारा प्रादुर्भूत हो भगवान् की चिता को ठण्डा किया। पृथ्वी के भीतर से भी जल-धारा निकल कर भगवान् की चिता को ठण्डा किया। कुशीनाराके मल्लोंने भी सर्व-गन्ध (-मिश्रित) जलसे भगवानकी चिता को ठण्डा किया।

१८२ तब कुशीनाराके मल्लोंने भगवान्‌की अस्थियोंको सप्ताह भर सस्थागारमें शक्ति (-हस्त पुरुषोंके घेरेका)-पजर बनवा, धनुष (-हस्त पुरुषोंके घेरेका) - प्राकार बनवा, नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गन्ध से सत्कार किया, गुरुकार किया, माना, पूजा।

१८०. तब आयुष्मान् महाकाश्यपने जहाँ मल्लोंका मुकुटबन्धन नामक चैत्य था, जहाँ भगवान्‌की चिता थी, वहाँ पहुँचकर, चीवरको एक कन्धेपर कर अञ्जली जोड, तीन बार चिताकी परिक्रमा कर, भगवान् के चरणों में सिरसे वन्दना की। उन पाँच सौ भिक्षुओंने भी एक कन्धेपर चीवर कर, हाथ जोड तीन वार चिताकी प्रदक्षिणा कर, भगवान्‌के चरणोंमें सिरसे वन्दना की। आयुष्मान् महाकाश्यप और उन पाँच सौ भिक्षुओंके वन्दना कर लेते ही, भगवान्‌की चिता स्वय जल उठी।

१८१ जलते हुए भगवान्‌के शरीरमें जो छवि(=झिल्ली)या चर्म, मास, नस,या लसिका थी उनकी न राख जान पडी, न कोयला, केवल अस्थियाँ ही शेष रह गयीं, जैसे कि जलते हुए घी या तेलकी न राख (=छारिका) जान पड़ती है, न कोयला (=मसी), ऐसे ही भगवान् के शरीर के जलते हुए जो छवि या चर्म, मास, नस या लसिका थी, उनकी न राख जान पडी, न कोयला, केवल अस्थियाँ ही शेष रह गयीं। उन पाँच सौ जोटे वस्त्रों में दो ही वस्त्र नहीं जले जो कि सबसे भीतर था और जो बाहर था। भगवान्‌के शरीर दग्ध हो जाने पर आकाश से जल-धारा प्रादुर्भूत हो भगवान् की चिता को ठण्डा किया। पृथ्वी के भीतर से भी जल धारा निकल कर भगवान् की चिता को ठण्डा किया। कुशीनाराके मल्लोंने भी सर्व-गन्ध (-मिश्रित) जलसे भगवानकी चिता को ठण्डा किया।

१८२ तब कुशीनाराके मल्लोंने भगवान्‌की अस्थियोंको सप्ताह भर सस्थागारमें शक्ति (-हस्त पुरुषोंके घेरेका)-पजर बनवा, धनुष (-हस्त पुरुषोंके घेरेका) - प्राकार बनवा, नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गन्ध से सत्कार किया, गुरुकार किया, माना, पूजा।

स्तूप-निर्माण

१८३. राजा मागध अजातशत्रु वेदेहीपुत्रने सुना—'भगवान् कुशीनारामे परिनिर्वाणको प्राप्त हुए ।' तब राजा अजातशत्रु ने कुशीनाराके मल्लोंके पास दूत भेजा—'भगवान् भी क्षत्रिय थे, मैं भी क्षत्रिय हूँ, भगवान्के शरीरो (=अस्थियों) में मेरा भाग भी वाजिब है । मैं भी भगवान्के शरीरोका स्तूप बनवाऊँगा और पूजा करूँगा ।'

१८४ वैशालीके लिच्छवियोंने सुना... ।

१८५ कपिलवस्तुके[1] शाक्योंने सुना... । भगवान् हमारे ज्ञाति श्रेष्ठ थे ।

१८६ अल्लकप्पके[2] बुलियोंने सुना ।

१८७. रामग्रामके[3] कोलियोंने सुना ।

---

१ तिलौरा कोट, तौलिहवा बाजारके पास, नेपाल-राज्य ।

२ सम्भवत वर्तमान बलिया जिला । बुलिया=बलिया ।

३ गोरखपुर शहरके पास रामगढ़ ।

१८८. वेठ[1]-द्वीपके ब्राह्मणने सुना , भगवान् भी क्षत्रिय थे हम ब्राह्मण…।

१८९. पावाके[2] मल्लोंने भी सुना ।

१९०. ऐसा कहनेपर कुसीनाराके मल्लोंने उन संघों और गणोंसे कहा—"भगवान् हमारे ग्राम-क्षेत्रमें परिनिर्वृत्त हुए, हम भगवान्के शरीरों (=अस्थियों) का भाग नहीं देंगे।"

१९१. ऐसा कहनेपर द्रोण ब्राह्मणने उन संघों और गणोंसे यह कहा—

"आप सब मेरी बात सुनें,
हमारे बुद्ध क्षांति (=क्षमा) वादी थे।
यह ठीक नहीं कि (उस) उत्तम पुरुषकी,
अस्थि-बाँटनेमें मारपीट हो।
आप सभी एक साथ, एक राय,
समोदन करके आठ भाग करें।
दिशाओंमें स्तूपोंका विस्तार हो,
बहुतसे लोग चक्षुष्मान् (बुद्ध) में प्रसन्न हों।"

१९२. "तो ब्राह्मण ! तूही भगवान्के शरीरको आठ समान भागोंमें सुविभक्त कर।"

१९३. "अच्छा भो !" द्रोण ब्राह्मणने भगवान्के शरीरोंको आठ

१ बेतिया, जिला चम्पार, बिहार।

२ सठियावँ-फाजिलनगर, जिला देवरिया।

खत्तिया। मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं। मयम्पि भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च करिस्सामा'ति'।

१८८ अस्सोसि खो वेठदीपको ब्राह्मणो—'भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो'ति'। अथ खो वेठदीपको ब्राह्मणो कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसि—'भगवापि खत्तियो अहमस्मि ब्राह्मणो। अहम्पि अरहामि भगवतो सरीरानं भागं। अहम्पि भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च करिस्सामी'ति'।

१८९. अस्सोसुं खो पावेय्यका मल्ला—'भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो'ति।' अथ खो पावेय्यका मल्ला कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसुं—'भगवापि खत्तियो मयम्पि खत्तिया। मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं। मयम्पि भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च करिस्सामा'ति।

१९० एवं वुत्ते कोसिनारका मल्ला ते सङ्घे गणे एतदवोचुं—'भगवा अम्हाकं गामक्खेत्ते परिनिब्बुतो न मयं दस्साम भगवतो सरीरानं भाग'न्ति'।

१९१ एवं वुत्ते दोणो ब्राह्मणो ते सङ्घे गणे एतदवोच—
'सुणन्तु भोन्तो! मम एकवाचं
अम्हाक बुद्धो अहु खन्तिवादो।
नहि साधु यं उत्तमपुग्गलस्स
सरीरभागे सिया सम्पहारो॥
सब्बेव भोन्तो! सहिता समग्गा
सम्मोदमाना करोमट्ठभागे।
वित्थारिका होन्तु दिसासु थूपा
बहूजना चक्खुमतो पसन्ना'ति॥

१९२. "तेन हि ब्राह्मण! त्वञ्ञेव भगवतो सरीरानि अट्ठधा समं सुविभत्तं विभजाही'ति।"

१९३. एवं भो'ति खो दोणो ब्राह्मणो तेसं सङ्घानं गणानं

१८८. वेठ[1]-द्वीपके ब्राह्मणने सुना , भगवान् भी क्षत्रिय थे, हम ब्राह्मण···।

१८९. पावाके[2] मल्लोंने भी सुना ।

१९० ऐसा कहनेपर कुशीनाराके मल्लोंने उन सघों और गणोंसे कहा—"भगवान् हमारे ग्राम-क्षेत्रमें परिनिर्वृत्त हुए, हम भगवान्‌के शरीरों (=अस्थियों) का भाग नहीं देंगे।"

१९१. ऐसा कहनेपर द्रोण ब्राह्मणने उन सघों और गणोंसे यह कहा—
"आप सब मेरी बात सुनें,
हमारे बुद्ध क्षांति (=क्षमा) वादी थे।
यह ठीक नहीं कि (उस) उत्तम पुरुषकी,
अस्थि-बाँटनेमें मारपीट हो।
आप सभी एक साथ, एक राय,
समोदन करके आठ भाग करें।
दिशाओंमें स्तूपोंका विस्तार हो,
बहुतसे लोग चक्षुष्मान् (बुद्ध) में प्रसन्न हों।"

१९२ "तो ब्राह्मण! तूही भगवान्‌के शरीरको आठ समान भागोंमे सुविभक्त कर।"

१९३ "अच्छा भो!" द्रोण ब्राह्मणने भगवान्‌के शरीरोंको आठ

---

१. बेतिया, जिला चम्पार, बिहार।

२ सठियावँ-फाजिलनगर, जिला देवरिया।

खत्तिया। मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं। मयम्पि भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च करिस्सामा'ति'।

१८८ अस्सोसि खो वेठदीपको ब्राह्मणो—'भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो'ति'। अथ खो वेठदीपको ब्राह्मणो कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसि—'भगवापि खत्तियो अहमस्मि ब्राह्मणो। अहम्पि अरहामि भगवतो सरीरानं भागं। अहम्पि भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च करिस्सामी'ति'।

१८९. अस्सोसुं खो पावेय्यका मल्ला—'भगवा किर कुसिनारायं परिनिब्बुतो'ति।' अथ खो पावेय्यका मल्ला कोसिनारकानं मल्लानं दूतं पाहेसुं—'भगवापि खत्तियो मयम्पि खत्तिया। मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं। मयम्पि भगवतो सरीरानं थूपञ्च महञ्च करिस्सामा'ति।

१९० एवं वुत्ते कोसिनारका मल्ला ते सङ्घे गणे एतदवोचुं—'भगवा अम्हाकं गामक्खेत्ते परिनिब्बुतो न मयं दस्साम भगवतो सरीरानं भाग'न्ति'।

१९१ एवं वुत्ते दोणो ब्राह्मणो ते सङ्घे गणे एतदवोच—
'सुणन्तु भोन्तो ! मम एकवाक्यं
अम्हाकं बुद्धो अहु खन्तिवादो।
नहि साधु यं उत्तमपुग्गलस्स
सरीरभागे सिया सम्पहारो॥
सब्बे'व भोन्तो ! सहिता समग्गा
सम्मोदमाना करोमट्ठभागे।
वित्थारिका होन्तु दिसासु थूपा
बहुज्जना चक्खुमतो पसन्ना'ति॥

१९२. 'तेन हि ब्राह्मण ! त्वञ्ञेव भगवतो सरीरानि अट्ठधा समं सुविभत्तं विभजाही'ति।"

१९३. एवं भो'ति खो दोणो ब्राह्मणो तेसं सङ्घानं गणानं

समान भागोंमें सुविभक्त (=बाँट) कर, उन संघो और गणोंसे कहा—"आप सब इस तुम्बेको मुझे दें, मैं तुम्बका स्तूप बनवाऊँगा और पूजा करूँगा।"

उन्होंने द्रोण ब्राह्मणको तुम्ब दे दिया।

१९४ पिप्पलीवनके[1] मोरियों (=मौर्यों) ने सुना . "भगवान् भी क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय हैं ।"

"भगवान्के शरीरोंका भाग नहीं है, भगवान्के शरीर बँट चुके। यहाँसे कोयला (=अंगार) ले जाओ।" वे वहाँसे अंगार ले गये।

१९५ तब [१] राजा अजातशत्रु ने राजगृहमें भगवान्की अस्थियोंका स्तूप (बनाया) और पूजा की। [२] वैशालीके लिच्छवियोंने भी । [३] कपिलवस्तुके शाक्योंने भी । [४] अल्लकप्पके बुलियोने भी । [५] रामग्रामके कोलियोंने भी । [६] वेठदीपके ब्राह्मणने भी । [७] पावाके मल्लोंने भी । [८] कुशीनाराके मल्लोंने भी ।

---

१ उपधौली, जिला गोरखपुर।

[९] दोणोपि ब्राह्मणो कुम्भस्स थूपञ्च महञ्च अकासि ।

[१०] पिप्फलिवनियापि मोरिया पिप्फलिवने अङ्गारानं थूपञ्च महञ्च अकंसु ।

१९१ इति अट्ठ सरीरथूपा नवमो कुम्भथूपो, दसमो अङ्गारथूपो एवमेतं भूतपुब्बन्ति ।

अट्ठ दोणं चक्खुमतो सरीरं
सत्तदोणं जम्बुदीपे महेन्ति ।
एकञ्च दोणं पुरिसवरुत्तमस्स,
रामगामे नागराजा महेति ॥
एका हि दाठा तिदिवेहि पूजिता,
एका पन गन्धारपुरे महीयति ।
कालिङ्गरञ्ञो विजिते पुनेकं,
एकं पुन नागराजा महेति ॥
तस्सेव तेजेन अयं वसुन्धरा,
आयागसेट्ठेहि मही अलङ्कता ।
एवं इमं चक्खुमतो सरीरं
सुसक्कतं सक्कतसक्कतेहि ॥
देविन्दनागिन्दनरिन्दपूजितो
मनुस्सिन्दसेट्ठेहि तथेव पूजितो ।
तं वन्दथ पञ्जलिका भवित्वा
बुद्धो हवे कप्पसतेहि दुल्लभो'ति ॥
चत्तालीस समा दन्ता केसा लोमा च सब्बसो ।
देवा हरिंसु एकेकं, चक्कवाळ परम्परा'ति ॥

महापरिनिब्बानसुत्तं निट्ठितं ।

[९] द्रोण ब्राह्मणने भी तुम्बका । [१०] पिप्पलीवनके मौर्योंने भी अंगारेका ।

१९६ इस प्रकार आठ शरीर (=अस्थि) के स्तूप, नवॉ तुम्ब-स्तूप और दसवॉ कोयला-स्तूप पूर्वकाल (=भूतपूर्व) मे थे ।

"चक्षुष्मान्‌का शरीर आठ द्रोण था,
(जिसमें) सात द्रोण जम्बूद्वीपमें पूजित होते हैं ।
(और) पुरुषोत्तमका एक द्रोण रामग्राममें नागोसे पूजा जाता है ।
एक दाढ (=दाठा) स्वर्गलोकमें पूजित है, और एक गन्धारपुरमे पूजी जाती है ।
एक कलिंगराजाके देशमें है, और एकको नागराज पूजते है ।
उसी तेजसे पटुकाकी भॉति यह वसुधरा मही अल्कृत है ।
इस प्रकार चक्षुष्मान् (= बुद्ध) का शरीर सत्कृतो द्वारा सुसत्कृत हुआ ।
देवेन्द्रों, नागेन्द्रो, नरेन्द्रोंसे पूजित, तथा श्रेष्ठ मनुष्योंसे पूजित हुआ ।
उसे हाथ जोडकर वन्दना करो, सौ कल्पमें भी बुद्ध होना दुर्लभ है ।
चालीस दॉत, केश और रोम को सब,
एक-एक करके चक्रवाल-परम्परा के अनुसार देवता ले गये ॥

महापरिनिर्वाणसूत्र समाप्त ।

परिशिष्ट—१

अट्ठकथा-सार

[१]

१. **गिज्झकूटे**—उस शिखर पर गृध्र रहते थे अथवा गृध्र के सदृश वह शिखर था, इसलिए गृध्रकूट कहलाता था।

२. **वज्जी अभियातु कामो होति**—राजा अजातशत्रु वज्जियों पर चढाई करना चाहता था। क्यों? गगा के एक घाट के आसपास आधा योजन अजातशत्रु का राज्य था और आधा योजन लिच्छवियों का। वहाँ पर्वत से बहुमूल्य सुगन्ध वाला माल उतरता था। उसको सुनकर अजात-शत्रु के 'आज जाऊँ, कल जाऊँ' करते ही लिच्छवी एक राय, एक मत हो पहले ही जाकर सब ले लेते थे। अजातशत्रु पीछे जाकर उस समाचार को पा क्रुद्ध हो चला आता था। वे दूसरे वर्ष भी वैसा ही करते थे। तब उसने अत्यन्त कुपित हो ऐसा सोचा—'गण (=प्रजातन्त्र) के साथ युद्ध कठिन है, उनका एक भी प्रहार व्यर्थ ही नहीं जाता। किसी एक पण्डित के साथ मन्त्रणा करके करना अच्छा होगा।' (सोच) उसने वर्षकार ब्राह्मण को तथागत के पास भेजा।

३. **समग्गा**—मुनादी का शब्द सुनते ही सब कार्य त्याग कर एक साथ ही सन्थागार में एकत्र हो जाते हैं।

४ **अपञ्ञत्तं**—पहले न किए गए शुल्क, वलि (=कर) या दण्ड लेने वाले अप्रज्ञप्त काम हैं। प्राचीन परम्परा से आए हुए को छोड़ना प्रज्ञप्त का उच्छेद करना है।

५. **पोराणं वज्जिधम्मं**—यह प्राचीन वज्जिधर्म है—'यह चोर है,

अपराधी है' कह कर या दिखलाने पर 'इस चोर को बाँधो' न कह कर विनिश्चय महामात्य (=न्यायाधीश) को देते थे। वह विचार कर अचोर होने पर छोड़ देते थे। यदि चोर होता, तो अपने कुछ न कह कर व्यवहारिक को देते थे। वह भी विचार कर अचोर होने पर छोड़ देते थे। यदि चोर होता तो सूत्रधार को देते थे। वह भी विचार कर अचोर होने पर छोड़ देते थे। यदि चोर होता तो अष्टकुलिक को देते थे। वह भी वैसा ही कर सेनापति को सेनापति उपराजा को और उपराजा राजा (=गणपति) को। राजा विचार कर यदि अचोर होता तो छोड़ देता। यदि चोर होता तो प्रवेणी-पुस्तक (=पवेणिपोत्थकं) बँचवाता। उसमें जिसने यह किया, उसको ऐसा दण्ड हो—लिखा रहता है। राजा उसके अपराध को उससे मिलाकर उसके अनुसार दण्ड करता।

६. कुलित्थियो—गृह-स्वामिनियाँ। पत्नियाँ।

७ कुल कुमारियो—अविवाहित पुत्रियाँ।

८ वज्जीनं चेतियानि—वज्जी-राजाओं के वज्जी-राज्य में पूजनीय यक्ष-स्थान (=यक्खट्ठानानि)।

९. सारन्ददे चेतिये—इस नाम के विहार में। यह सारन्दद नामक यक्ष के चैत्य-स्थान पर बना था, जिसमें भगवान् ने विहार किया था।

१० पक्कामि—राजा के पास गया। राजा ने उससे पूछा—'आचार्य! भगवान् ने क्या कहा?' उसने कहा—भो! श्रमण गौतम के कथन से तो वज्जियों को किसी प्रकार भी लिया नहीं जा सकता। हाँ रिश्वत (=उपलापन) और आपस में फूट होने से लिया जा सकता है। तब राजा ने कहा—"रिश्वत से हमारे हाथी-घोड़े नष्ट होंगे, भेद (=फूट) से ही पकड़ना चाहिए।"

'तो महाराज! वज्जियों को लेकर तुम परिषद् में बात उठाओ। तब मैं—'महाराज! तुम्हें उनसे क्या है? अपनी कृषि वाणिज्य करके वह राजा (=प्रजातन्त्र के सभासद्) जीयें' कह कर चला जाऊँगा। तब

तुम बोलना—'क्यो जी ! यह ब्राह्मण वज्जियो के सम्बन्ध मे होती बात को रोकता है।' उसी दिन मैं उन (=वज्जियों) के लिए भेंट भेजूँगा। उसे भी पकड़ कर मेरे ऊपर दोषारोपण कर, बन्धन, ताडन आदि न कर छूरे से मुण्डन करा मुझे नगर से निकाल देना। तब मैं कहूँगा—'मैंने तेरे नगर में प्राकार और खाई बनवायी है। मैं दुर्बल तथा गम्भीर स्थानों को जानता हूँ। अब जल्दी तुझे सीधा करूँगा।' ऐसा सुनकर बोलना—'जाओ तुम।'

राजा ने वैसा ही सब किया। लिच्छवियों ने उसके निकालने को सुनकर कहा—ब्राह्मण मायावी (=शठ) है, उसे गगा न उतरने दो। तब किन्हीं-किन्ही के—'हमारे लिए कहने से तो वह राजा ऐसा करता है' कहने पर—'तो भणे आने दो।' उसने जाकर लिच्छवियों द्वारा—'किसलिए आए ?' पूछने पर वह सब हाल कह दिया। लिच्छवियों ने—'थोडी-सी बात के लिए इतना भारी दण्ड करना युक्त नहीं था।' कह कर—'वहाँ तुम्हारा क्या 'पद' था।' पूछा। 'मैं विनिश्चय महामात्य था' कहने पर—'यहाँ भी तुम्हारा वही रहे' कहा।

वह अच्छे ढग से विनिश्चय (=इन्साफ) करता था। राजकुमार उसके पास विद्या ग्रहण करते थे। अपने गुणों से प्रतिष्ठित हो जाने पर वह एक दिन एक लिच्छवी को एक ओर ले जाकर—'खेत जोतते हैं ?' 'हाँ जोतते हैं।' दो बैल जोतकर ?' 'हाँ, दो बैल जोतकर' कह कर लौट आया। तब उसको दूसरे के—'आचार्य ! उसने क्या कहा ?' पूछने पर, उसने वह कह दिया। तब 'मेरा विश्वास न कर, यह ठीक-ठीक नहीं बतलाता है' सोच उसने बिगाड कर लिया। ब्राह्मण दूसरे दिन भी एक लिच्छवी को एक ओर ले जाकर 'किस व्यजन से भोजन किया ?' पूछकर लौटने पर उससे भी दूसरे ने पूछकर, न विश्वास कर वैसे ही बिगाड कर लिया। ब्राह्मण किसी दूसरे दिन एक लिच्छवी को एकान्त में ले जाकर—'बडे गरीब हो जी न ? पूछा। 'किसने ऐसा कहा ?' अमुक लिच्छवी ने।' दूसरे को भी एक ओर ले जाकर—'तुम कायर हो क्या ?' 'किसने

ोषा कहा !—'अमुक लिच्छवी ने ।' इस प्रकार दूसरे के न कहे हुए को
कहते तीन वर्ष (दे॰ पृष्ठ ५४१-५०) में उन राजाओं में परस्पर ऐसी फूट
डाल दी कि दो आदमी एक रास्ते भी न जाते थे । ऐसा करके जमा
होने का नगारा (=सन्निपात-भेरी) बजवाया ।

लिच्छवी—'मालिक लोग जमा हों' कह कर नहीं जमा हुए । तब
उस ब्राह्मण ने राजा को जल्दी आने के लिए खबर भेजी । राजा सुनकर
सैनिक नगारा (=बलभेरी) बजवा कर निकला । वैशाली वालों ने सुनकर
भेरी बजवाई—'आओ चलें, राजा को गंगा न उतरने दें ।' उसको भी
सुनकर—'देवराज लोग जायें' आदि कह कर लोग नहीं जमा हुए । तब
भेरी बजवाई—'नगर में घुसने न दें, नगर द्वार बन्द करके रहें ।' एक भी
नहीं जमा हुआ । राजा अजातशत्रु खुले द्वार से ही घुसकर सबको तबाह
कर चला गया ।

११. इति सीलं—शील ऐसा है । शील इतना है । यहाँ चार पारि
शुद्धि शील को शील जानना चाहिए । चित्त की एकाग्रता को समाधि,
और *विपश्यना-प्रज्ञा को प्रज्ञा ।*

१२. सीलपरिभावितो—जिस शील में रहकर मार्ग-समाधि और
फल-समाधि को उत्पन्न करता है—वह उस शील से परिभावित (=सेवित)
होकर महाफलवान् और महागुणवान् होता है ।

१३. अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो—यह स्थल यहाँ नहीं
होना चाहिये था क्योंकि आयुष्मान् सारिपुत्र के परिनिर्वाण के बाद
भगवान् यहाँ पहुँचे थे । उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र जीवित न थे ।

१४. आवसथागार—अतिथियों के लिए निर्मित अतिथि शाला ।
पाटलिग्राम में सदा दोनों राजाओं के सहायक आकर मनुष्यों को घर से
बाहर निकाल एक महीना, आधा महीना रहते थे । उन मनुष्यों ने परेशान
होकर उनके रहने के लिए नगर के मध्य बड़ी आवसथागार बनवायी ।

१५. सब्बसन्थरिं—जैसे सब बिछा हो, वैसे बिछा कर ।

१६. वत्थुभूमि—निवास-स्थान (=वास्तुभूमि) ।

१७ उलुम्पं—पार जाने के लिए कीलें ठोककर बनाया हुआ।
१८. कुल्लं—वल्ली आदि बाँध कर बनाया हुआ।

[२]

१९. कोटिगामो—महाप्रणाद (= महापनाद) के प्रासादके सिरे पर बसा ग्राम।

२०. नातिका—एक तालाब के किनारे दो चचेरे भाइयो द्वार पुत्रों के लिए बसाया हुआ ग्राम। यह ज्ञाति ग्राम था।

२१. गिञ्जकावसथे—ईंट से बना हुआ आवास।

२२. अम्बपालिवने—अम्बपाली गणिका के उद्यान में। वह उद्यान आम के वृक्षों का था।

२३ सतो भिक्खवे—अम्बपाली के दर्शन से स्मृति को प्रस्तुत रखने के लिए विशेष रूप से यहाँ भगवान् ने स्मृति-प्रस्थान का उपदेश आरम्भ किया।

२४. साहारं—स-जनपद। जनपद के साथ। पूरे जवार सहित।

२५. वेलुवगामको—वैशाली के पास एक छोटा ग्राम।

२६ मधुकरजातो—भारी हो जाना। जड पड जाना। शूली पर चढाये हुए व्यक्ति के समान भयभीत हो जाना।

२७ आचरियमुट्ठि—जैसे अन्य मतावलम्बियों मे आचार्यमुष्ठि होती है। वे तरुणावस्था में किसी को न कह कर अंत समय में मृत्युशय्या पर लेटे अपने प्रिय मनचाहे शिष्य को कहते हैं, ऐसे तथागत को इसे वृद्ध काल अन्तिम समय में कहूँगा—इस प्रकार सोचकर अलग करके रखी हुई कोई बात नहीं है। इसीलिये तथागत में धर्म के प्रति किसी प्रकार की आचार्यमुष्ठि नहीं है।

२८. अत्तदीपा—महासमुद्र में द्वीप की भाँति अपने को द्वीप के समान आधार बना कर विहरना। (महासमुद्दगतदीप विय अत्तान दीप पतिट्ठ कत्वा विहरथ)।

[३]

२९. *वेसालियं पिण्डाय पाविसि*—कब प्रवेश किया ? इसका भेद वैशाली जाने के समय । भगवान् ने वर्षावास कर के वेलुग्राम से निकल कर "श्रावस्ती जाऊँगा" सोच आये हुए मार्ग से ही लौटकर क्रमशः श्रावस्ती जाकर जेतवन में प्रवेश किया । धर्मसेनापति (सारिपुत्र) ने चैत्याकर्म कर दिन के विहार के लिये प्रस्थान किया ।… उन्होंने वहाँ विचार किया—बुद्ध का परिनिर्वाण पहले होता है अथवा अग्रश्रावकों का ? अग्रश्रावकों का परिनिर्वाण पहले होता है, ऐसा जानकर अपने आयु-संस्कार का अवलोकन किया । सप्ताह भर ही आयु-संस्कार और शेष, जानकर कहाँ परिनिर्वाण प्राप्त करूँगा—ऐसा विचार किया । तत्पश्चात् राहुल तावतिंस में परिनिर्वाण प्राप्त हुए, अञ्ञाकोण्डञ्ञ स्थविर छद्दन्त दह (= दह) में, मैं कहाँ परिनिर्वाण को प्राप्त करूँगा ? बार बार विचार करते हुए माता के प्रति स्मृति हो आई । वे अपने जन्मग्राम जाने के लिये ५ भिक्षुओं के साथ भगवान् के पास जाकर परिनिर्वाण की अनुमति माँगते हुए यथायत से बोले—"भन्ते ! मुझे अब परिनिर्वाण की आज्ञा दीजिये"

"सारिपुत्र ! तुम कहाँ परिनिर्वाण को प्राप्त होगे ?"

"भन्ते ! मगध जनपद में, नालकग्राम में, अपने उत्पन्न हुए घर में ।"

'सारिपुत्र ! तुम जिसका काल समझो ।"

वे अपनी परिषद् के साथ चले गये । एक सप्ताह के पश्चात् नालकग्राम पहुँचे । …रात्रि में अपने जन्मघर में ठहरे । माँ को उपदेश दे अरुणोदय काल में महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए ।' आयुष्मान् चुन्द स्थविर के पात्र चीवर और अस्थियों को लेकर जेतवन जा आनन्द स्थविर के साथ भगवान् के पास गये । भगवान् ने अस्थियों को लेकर ५ गाथाओं द्वारा स्थविर के गुणों की प्रशंसा कर धातु-चैत्य बनवा

राजगृह चलने के लिये आनन्द स्थविर को सकेत किया। स्थविर ने भिक्षुओं से कहा। भगवान् बहुत बड़े भिक्षु सघ के साथ राजगृह गये। वहाँ जाने पर महामौद्गल्यायन स्थविर का परिनिर्वाण हुआ। भगवान् उनकी अस्थियों को लेकर चैत्य बनवा, राजगृह से निकल क्रमश गगा की ओर जाते हुए उल्काचेल पहुँचे।

वहाँ गगा के किनारे भिक्षुसघ के साथ बैठकर सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के परिनिर्वाण के सम्बन्ध में सूत्र का उपदेश दे उल्काचेल से निकल कर वैशाली गये।

३०. उदेनचेतियं—उदयन नामक यक्ष के वासस्थानपर बना हुआ चैत्य। ऐसे ही गौतमक आदि मे भी समझना चाहिए।

३१ भाविता—बढाये हुए (=वड्ढिता)।

३२ बहुलीकता—बार बार की हुई (=पुनप्पुनकता)।

३३ यानीकता—जुड़े यान की तरह की हुई (=युत्तयान विय कता)।

३४ वत्थुकता—आधार के रूप मे वस्तु के समान की हुई (=पतिट्ठट्ठेन वत्थु विय कता)।

३५. अनुट्ठिता—अधिष्ठित (=अधिट्ठित)।

३६ परिचिता—परिचित (=समन्ततो चिता, सुवड्ढिता)।

३७ सुसमारद्धा—भली प्रकार अभ्यस्त (=सुट्ठु समारद्धा)।

३८. कप्पं—आयु-कल्प। उस-उस समय मनुष्यों की जो आयु होती है, उसे पूर्ण करता हुआ रहे।

३९ मार—प्राणियों को अनर्थ में लगाकर मारता है, इसलिए मार कहा जाता है। पापिम, कृष्ण (=कण्हो), अन्तक, नमुचि, पमत्तबन्धु भी उसी के नाम हैं।

४०. भासिता खो पनेसा—भगवान् ने बुद्धत्व-प्राप्ति के पश्चात् आठवें सप्ताह में बोधिवृक्ष के नीचे मार से कहा था।

४१ धम्मानुधम्म पटिपन्ना—आर्यधर्म के अनुधर्म स्वरूप

विपस्सना धर्म में लगा हुआ।

४२. सकं आचरियकं—अपने आचार्यवाद को।

४३. सहधम्मेन—सहेतुक सकारण वचन से।

४४. सप्पाटिहारियं—उसे निर्याणिक (=निस्तार स्वरूप) करके धर्मोपदेश करते हैं।

४५ सतो सम्पजानो आयुसंखारं ओस्सजि—स्मृति को उपस्थित करके ज्ञान से परिच्छेद कर आयु-संस्कार को त्याग दिया। यहाँ भगवान् ने हाथ से ढेला फेंकने के समान आयु-संस्कार को नहीं त्यागा। 'तीन मास भर ही समापत्ति में विहार करूँगा, उसके पश्चात् नहीं'—ऐसा चित्त उत्पन्न किया।

४६. देवदुन्दुभियो च फलिंसु—देव-नगाड़े बज उठे। मेघों ने शुष्क-गर्जना की। असमय में बिजलियाँ चमक उठीं। घनघोर वर्षा हुई—यह कहा गया है।

४७ अत्तसम्भवं—अपने भीतर उत्पन्न क्लेश को।

४८. अभिभायतनानि—अभिभव करने के कारण-स्थान। किसे अभिभव करना? विरुद्ध धर्मों को भी, आलम्बनों को भी। वे विरोधी धर्मों को दबा देते हैं, [illegible] हैं। वे व्यक्ति के अनुत्तर ज्ञान-प्राप्ति के आलम्बन हैं।

४९. वाराणसेय्यकं—वाराणसी में उत्पन्न। वहाँ कपास मृदु होती है और सूत कातनेवाली स्त्रियाँ तथा बुनकर भी दक्ष होते हैं। जल भी पवित्र और स्निग्ध है। इसलिए वह वस्त्र दोनों ओर से चिकना होता है।

[४]

५० नागापलोकितं—भगवान् ने क्यों वैशाली को हाथी के अवलोकन करने के समान देखा? 'वैशाली के राजाओं के निकट भविष्य में ही विनष्ट होने के कारण। तीन वर्षों के बाद ही वे विनष्ट हो जायेंगे। वे नगर द्वार पर 'नागापलोकित चैत्य' बनाकर गन्ध-माला आदि

से पूजा करेंगे। वह उनके दीर्घकाल के लिए हितकर और सुखकर होगा—सोच, उनपर अनुकम्पा करके भगवान् ने हाथी की भाँति अव-लोकन किया।

५१. **महापदेसे**—महा-अवकाश अथवा महा-अपदेश। महा-कारण—अर्थ है।

५२. **कम्मारपुत्तस्स**—स्वर्णकार-पुत्र। वह महाधनी गृहस्थ था। उसने भगवान् के प्रथम दर्शन मे ही स्रोतापन्न हो अपने आम्रवनमें विहार बनवा कर दान किया था।

५३. **सुकरमद्दवं**—न अति-तरुण, न अति-जीर्ण एक वर्ष के सूअर का बना हुआ तैयार मास। वह मृदु और स्निग्ध होता है। उसे तैयार करा, भली प्रकार पकाकर—अर्थ है।

कुछ लोग कहते हैं कि सुकरमद्दव मृदु भात का नाम है, जो पञ्चगोरस-यूस को पकाने की विधि से तैयार किया जाता है। जैसे कि गवपान पाक-विशेष का नाम है।

कोई-कोई कहते हैं कि सुकरमद्दव एक रसायन-विधि है। उसका वर्णन रसायन शास्त्र मे आता है। भगवान् का परिनिर्वाण न हो, इस विचार से चुन्द द्वारा रसायन तैयार किया गया था। उसमें दो हजार द्वीपोंवाले चार महाद्वीपों के देवताओं ने ओज डाल दिया था।

५४ **मल्लपुत्तो**—मल्ल-राजपुत्र। मल्ल बारी-बारी से राज्य करते है। जबतक उनकी बारी नहीं आती है, तबतक व्यापार करते हैं। यह भी व्यापार ही करता हुआ पाँच सौ बैलगाडियों को जोतवा आगे की ओर से हवा चलने के समय आगे-आगे चलता था और पीछे की ओर से हवा चलने के समय सार्थवाह को आगे भेजकर स्वय पीछे पीछे चलता था। उस समय पीछे की ओर से हवा चल रही थी, इसलिए यह सार्थवाह को आगे भेजकर सब रत्नों के यानपर बैठकर कुशीनारा से निकल पावा जाऊँगा—सोच मार्ग में निकल पडा। इसलिए कहा गया है कि कुशीनारा से पावा के मार्गपर चल रहा था।

५५. युगमट्ठं—एक जोड़ा। कोमल जोड़ा-वस्त्र—अर्थ है।

५६. उपवत्तने—पूरब से मुड़े हुए शालवन में (पाचीनतो निवत्तनसालवने)।

५७. अन्तरेन यमकसालानं—जोड़े शालवृक्षों के मध्य।

५८. वेरं न चीयति—पाँच प्रकार का वैर नहीं बढ़ता है।

[५]

५९. *महता भिक्खुसंघेन सद्धिं*—भिक्षुओं की गणना असंख्य थी। वेलुव ग्राम में भगवान् की बीमारी शान्त होने के बाद से तीन मास के उपरान्त ही परिनिर्वाण की बात सुन भिक्षु साथ ही रहने लगे थे, इसलिए भिक्षुओं की संख्या गणना रहित हो गयी थी।

६०. उपवत्तनं मल्लानं सालवनं—जैसे (लंका में) कदम्ब नदी के किनारे से राजमाता-विहार के द्वार से स्तूपाराम को जाना होता है ऐसे हिरञ्ञवती के उस पार से शालवन-उद्यान को। जैसे अनुराधपुर का स्तूपाराम है ऐसे यह कुसीनारा में है। जैसे स्तूपाराम से दक्षिण-द्वार से नगर में जाने का मार्ग पूर्व-मुँह जाकर उत्तर की ओर मुड़ा है ऐसे उद्यान से शालवन पूर्वमुँह जाकर उत्तर की ओर मुड़ा है इसलिए वह 'उपवत्तन' कहा जाता है।

६१ मञ्चकं पञ्ञपेहि—उस उद्यान में संघ का शयन मंच था उसी के प्रति 'बिछाओ' कहा गया है।

६२. किलन्तोस्मि आनन्द निपज्जिस्सामीति—चुन्द के भोजन को ग्रहण करने के पश्चात् कच्चे में डाले पानी के समान सारा बल नष्ट हो गया। पावा नगर से कुसीनारा नगर तीन गव्यूति है। इस बीच में पच्चीस स्थानों में बैठकर महा उत्साह से आते हुए भी सूर्यास्त के समय शालवन भगवान् ने शालवन में प्रवेश किया।

क्यों भगवान् महा उत्साह के साथ यहाँ आये? क्या अन्य स्थानार

परिनिर्वाण प्राप्त नहीं कर सकते ? तीन कारणों से यहाँ आये। भगवान् ने ऐसा विचार किया—मेरे दूसरे स्थानपर परिनिर्वाण प्राप्त करने पर महासुदर्शन सुत्त की अर्थोत्पत्ति न होगी। अन्यत्र परिनिर्वाण प्राप्त करने पर सुभद्र नहीं देखेगा। अन्यत्र परिनिर्वाण प्राप्त करने पर अस्थियों के बँटवारे में महाकलह होगा, लोहू नदी की भाँति बहेगा। कुशीनारा में द्रोण ब्राह्मण उस विवाद को शान्तकर धातुओं का विभाजन करेगा। इन्हीं तीन कारणों से भगवान् ऐसे महा-उत्साह से कुशीनारा आये।

६३ **सीहसेय्यं**—कामभोगी शय्या, प्रेत्य शय्या, सिंह शय्या, तथागत-शय्या—ये चार प्रकार की शय्यायें हैं। बायें पार्श्व से सोना कामभोगी शय्या है। उत्तान सोना प्रेत्य-शय्या है। सिंह दायें पार्श्व से सोता है, इसे सिंह शय्या कहते हैं। चतुर्थ ध्यान-शय्या तथागत शय्या कहलाती है। यहाँ सिंह-शय्या से ही अभिप्राय है।

६४ **पादे पादं अच्चाधाय**—दायें पैर पर बायें पैर को थोडा-सा हटा कर रखते हुए। गुल्फ पर गुल्फ या घुटने पर घुटना पडने से पीडा होती है। सुख-शय्या नहीं होती, इसलिए थोडा हटाकर रखना उत्तम होता है। वैसा रखने से चित्त एकाग्र होता है। ' पहले पहर में मल्लो को धर्मोपदेश दिया गया, बिचले पहर में सुभद्र को, पिछले पहर मे भगवान् ने भिक्षु-सघ को उपदेश दिया, प्रत्यूषा के समय परिनिर्वाण प्राप्त किया।

६५ **परमाय पूजाय**—उत्तम पूजा से (= उत्तमाय पूजाय)।

६६. **सारत्थे**—उत्तमार्थ में, अर्हत्व में।

६७ **अहतेन वत्थेन**—काशी के नये वस्त्र से।

६८ **विहतेन कप्पासेन**—धुनी हुई कपास से। काशी का वस्त्र सूक्ष्म होने के कारण तेल ग्रहण नहीं करता, किन्तु कपास ग्रहण करती है, इसलिए 'धुनी हुई कपास से' कहा गया है।

६९. **आयसाय**—सोने की। यहाँ सोना ही 'अयस्' है।

७० **कपिसीसं**—चौखट के किनारे स्थित जजीर (= अर्गला) की लकडी (=अग्गलरुक्खं)।

७१. खुद्दकनगरके—नगर के समान बिल्कुल छोटे नगर में।

७२. उज्जङ्गलनगरके—विषम नगर में।

७३. साखानगरके—जैसे वृक्षों की डालियाँ होती हैं, वैसे अन्य महानगरों की डाली की भाँति छोटे नगर में।

७४. खत्तियमहासाला—महाधनवान् क्षत्रिय। जिनके यहाँ सौ करोड़, हजार करोड़ धन गाड़ कर रखा होता है, दिन का व्यय एक गाड़ी कार्षापण होता है, सायंकाल दो गाड़ी कार्षापण की आय होती है—वे क्षत्रिय महासार हैं। ब्राह्मण महासार उन्हें कहते हैं जिनके यहाँ अस्सी करोड़ धन गड़ा होता है, दिन का व्यय एक कुम्भ कार्षापण और आय एक गाड़ी कार्षापण होती है। गृहपति महासार वे हैं, जिनके यहाँ चालीस करोड़ धन गड़ा होता है, दिन का व्यय पाँच अम्मण कार्षापण होता है और आय एक कुम्भ होती है।

७५. अम्हाकञ्च नो—यहाँ 'नो' निपात मात्र है।

७६. समणोपि तत्थ न उपलब्भति—यहाँ पहला स्रोतापन्न श्रमण भी नहीं है, दूसरा सकृदागामी श्रमण भी, तीसरा अनागामी श्रमण भी, चौथा अर्हत् श्रमण भी।

[६]

७७. समुदाचरन्ति—कहते हैं, व्यवहार करते हैं।

७८. सब्बञ्च खादनीयं—सभी खाद्य सामग्री।

७९. अट्ठमल्लपामोक्खा—मध्यम वय के प्रतिरूपस्थ आठ मल्ल राजा।

८०. मकुटबन्धनं नाम मल्लानं चेतियं—मल्ल राजाओं के प्रसाधन मंगल-शाला का यह नाम है। 'मुकुट लगाने का स्थान' के अर्थ में चैत्य कहलाता है।

८१. सन्धि—घर की गली। समलं—गन्दगी बहाने वाली नाली। सङ्कटीरं—कूड़ा-करकट फेंकने का स्थान (=घूरा)।

८२ मज्झेन मज्झं नगरस्स हरित्वा—भगवान् के शरीर को ले जाते समय बन्धुलमल्ल सेनापति की भार्या मल्लिका 'भगवान् के शरीर को ला रहे हैं' सुनकर अपने पति की मृत्यु के समय से लेकर न पहनकर रखे हुए विशाखा के प्रसाधन के सदृश महालता प्रसाधन को निकाल कर "इससे शास्ता की पूजा करूँगी" (सोच), उसे साफ करवा सुगन्धित जल से धो द्वार पर खड़ी हो गई। वह प्रसाधन उन दोनों स्त्रियों के पास, देवदानिय चोर के घर में—तीन स्थानों में ही था। शास्ता के शरीर के द्वार पर आने पर "तात! उतारो शास्ता के शरीर को" उसने कहा और उस प्रसाधन को शास्ता के शरीर पर ओढ़ा दिया। वह सिर से लेकर पैर तक चला गया। स्वर्ण वर्ण का भगवान् का शरीर सत-रत्नमय प्रसाधन (=आभूषण) से ढँक कर अत्यन्त सुशोभित हो गया। उसने उसे देख कर प्रसन्न मन से प्रार्थना की—"भगवान्! जब तक संसार के आवागमन में पड़ी रहूँगी, तब तक मुझे प्रसाधन की अलग से आवश्यकता न हो, नित्य प्रसाधन धारण किए हुए सदृश मेरा शरीर हो।" तब भगवान् को सत-रत्नमय प्रसाधन के साथ उठा कर पूर्व के द्वार से ले जा, नगर से पूर्व जहाँ मुकुटबन्धन नामक मल्लों का चैत्य है, वहाँ रखा।

८३. सुभद्दो नाम बुड्ढपब्बजितो—सुभद्र नाम था, वृद्धावस्था में प्रव्रजित होने के कारण वृद्ध प्रव्रजित कहा जाता था। उसने क्यों ऐसा कहा? भगवान् के प्रति आघात (=वैर) होने से। इसका सविस्तार वर्णन विनय-पिटक के स्कन्धक के 'आतुमा वत्थु' में आया है। वहाँ बतलाया गया है कि यह आतुमा का रहने वाला वृद्ध प्रव्रजित नाई था। (कथा के लिए विनय पिटक देखें)।

८४. सरीरानेव अवसिस्सिंसु—पहले एक घन होने के कारण 'शरीर' था, अब बिखर जाने के कारण 'सरीरानि' (= शरीर का बहु-वचन) कहा गया है। पुष्प की कली, धोये हुए मोती और स्वर्ण के

सजे हुए हाथी पर धातुओं के साथ स्वर्ण-द्रोणी को रख, माला-गन्ध आदि से पूजा करते, भली प्रकार क्रीडा करते हुए नगर में प्रवेश करके सस्थागार में सारमय पर्यंक पर रखा, ऊपर श्वेत-छत्र लगाया। ऐसा करके कुशीनारा के मल्लो ने भगवान् की अस्थियों को सप्ताह भर सस्थागार में शक्ति पञ्जर करके रखा।

८७ **सत्तिपञ्जरं करित्वा**—बर्छी (=शक्ति) लिए हुए सिपाहियों द्वारा घेर कर।

८८ **धनुपाकारं**—प्रथम हाथी के सिर से सिर को टकराते टकराते हुए घेरा। तत्पश्चात् क्रमश घोडों को गर्दन से गर्दन टकराते हुए, रथों को धुरी से धुरी टकराते हुए, योद्धों को बाँह से बाँह को सटाते हुए। उनके अन्त में सिरे से सिरे को सटाते हुए धनुषों को घेरा। इस प्रकार चारो ओर एक योजन तक सप्ताह भर सेना-गर्जन के समान करके आरक्षा सविधान किया।

८९ **चक्खुमतो**—पाँच चक्षुओं से चक्षुष्मान् बुद्ध के लिए।

९० **राजा मागधो ' थूपञ्च महञ्च अकासि**—कुशीनारा से राजगृह पचीस योजन है। इस बीच में आठ ऋषभ चौडा समतल मार्ग बनवा, मल्ल-राजाओं ने मुकुटबन्धन और सस्थागार में जैसी पूजा की थी, वैसी ही पूजा पचीस योजन मार्ग में की। उसने अपने पाँच सौ योजन परिमण्डल (=घेरेवाले) राज्य के मनुष्यों को एकत्रित करवाया। उन धातुओं को ले कुशीनारा से धातु (-निमित्त) क्रीडा करते निकलकर लोग जहाँ सुन्दर पुष्पों को देखते, वहीं पूजा करते थे। इस प्रकार धातु लेकर आते हुए सात वर्ष, सात मास, सात दिन बीत गए। लाई गई धातुओं को लेकर (अजातशत्रु ने) राजगृह में स्तूप बनवाया, पूजा कराई।

इस प्रकार स्तूपों के प्रतिष्ठित हो जाने पर महाकाश्यप स्थविर ने धातुओंके अन्तराय (=विघ्न) को देखकर राजा अजातशत्रु के पास जाकर

कहा—"महाराज ! एक धातु-निधान (=अस्थि-धातु रखने का तहखाना) बनाना चाहिए।"

"अच्छा भन्ते !"

स्थविर उन उन राजकुलों को पूजा करने मात्र की धातु छोड़कर बाकी धातुओं को ले आये। रामग्राम से धातुओं के नागों के ग्रहण करने से अन्तराय न था। 'भविष्य में लंका द्वीप में इसे महाविहार के महाचैत्य में स्थापित करेंगे।' छोड़कर भी न ले आये। शेष सातों नगरों से ले आकर, राजगृह के पूर्व-दक्षिण भाग में (जो स्थान है, राजा ने उस स्थान को खोदवाकर, उससे निकली मिट्टी से ईंटें बनवाई। 'यहाँ राजा क्या बनवाता है', पूछनेवालों को भी 'अस्सी महाश्रावकों का चैत्य बनवाता है' यही कहते थे। कोई भी धातु-निधान की बात न जानता था।

धातु-निधान हो जाने पर महाकाश्यप ने स्वर्णपत्र पर इन अक्षरों को लिखवाया—'अनागते पियदासो नाम कुमारो छत्तं उस्सापेत्वा असोको नाम धम्मराजा भविस्सति सो इमा धातुयो वित्थारिका करिस्सतीति' (भविष्य काल में प्रियदास नामक कुमार राज छत्र धारण कर अशोक नामक धर्मराजा होगा, वह इन धातुओं का विस्तार करेगा)।

अनन्तर में प्रियदास नामक कुमार 'अशोक' नामक धर्मराज होकर उन धातुओं को लेकर जम्बूद्वीप में विस्तार किया। उसने करोड़ धन व्यय कर चौरासी हजार विहारों को बनवाया। अपने पुत्र (महेन्द्र) और पुत्री (संघमित्रा) को प्रव्रजित कराया।

९१ एवमेतं भूतपुब्बं—इस प्रकार भूतकाल में जम्बूद्वीप में धातुओं का विस्तार हुआ। तृतीय संगीति करने वाले स्थविरों ने इसे लिखा।

९२. अट्ठ दोणं चक्खुमतो सरीरन्ति—ये गाथायें ताम्रपर्णी (लंका) द्वीप के स्थविरों द्वारा कही गई हैं।

परिशिष्ट–२

पारिभाषिक शब्द

१. सत्त अपरिहानिया धम्मा—उन्नति की ओर ले जाने वाली सात बातें। भगवान ने वैशालीमें लिच्छवियों को सर्वप्रथम इसका उपदेश दिया था और उसी का स्मरण राजगृह में वर्षकार ब्राह्मण के आने पर आयुष्मान् आनन्द की उपस्थिति में किया था। वे सात उन्नतिगामी धर्म ये हैं—(१) सम्मति के लिए बराबर बैठक करना। (२) एक साथ बैठक करना, एक साथ उठना और एक साथ करणीय कार्यों को करना। (३) अवैधानिक कार्यों को न करना और विधान का उल्लघन न करना। (४) वृद्धों का सत्कार-सम्मान करना, उनकी बातें सुनने योग्य मानना। (५) महिलाओं के साथ जोर-जबर्दस्ती न करना, उचित व्यवहार करना। (६) पूजनीय स्थानों की पूजा का लोप न करना। (७) अर्हतों (=पूज्यों) की धार्मिक रक्षा करना।

२. आसवा—चित्त-मल। आश्रव चार होते हैं—कामाश्रव, भवाश्रव, दृष्टाश्रव, अविद्याश्रव। कामभोग सम्बन्धी विचार कामाश्रव है। बार-बार ससार में जन्म लेने की कामना भवाश्रव है। मिथ्या दृष्टि अर्थात् झूठी धारणा दृष्टाश्रव है। चार आर्यसत्यों का ज्ञान न होना ही अविद्याश्रव है।

३ पञ्चनीवरण—नीवरण का अर्थ है ढकन। नीवरण पाँच हैं—(१) कामच्छन्द (२) व्यापाद (३) स्त्यानमृद्ध (४) औद्धत्य कौकृत्य (५) विचिकित्सा। काम-भोग सम्बन्धी कामना को कामच्छन्द कहते हैं। प्रतिहिंसा की भावना व्यापाद है। मानसिक और शारीरिक आलस्य स्त्यानमृद्ध है। चचलता और पश्चात्ताप औद्धत्य कौकृत्य है। बुद्ध, धर्म और

धर्म के सम्बन्ध में सन्देह विचिकित्सा है। इन्हीं पाँच नीवरणों के दब जाने पर प्रथम ध्यान प्राप्त होता है।

४ सीलं—सदाचार। इसके पाँच गुण और पाँच अवगुण हैं। जो शील का पालन करता है, वह (१) धन-सम्पत्ति प्राप्त करता है। (२) उसकी कीर्ति फैलती है। (२) वह सभाओं में निर्भीक होकर जाता है। (४) वह स्मृति के साथ मरता है। (५) मृत्यु के उपरान्त सुगति को प्राप्त हो स्वर्ग में उत्पन्न होता है।

जो शीलवान् नहीं होता है, (१) उसकी धन सम्पत्ति की हानि होती है। (२) निन्दा होती है। (३) सभाओं में मौन होकर रहता है। (४) बेहोश होकर मरता है। (५) मृत्यु के उपरान्त नरक में उत्पन्न होता है।

५ चत्तारि अरियसच्चानि—आर्य सत्य चार हैं—(१) दुःख आर्यसत्य (२) दुःख समुदय आर्यसत्य, (३) दुःखनिरोध आर्यसत्य (४) दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा आर्यसत्य। जन्म लेना दुःख है वृद्ध होना दुःख है मृत्यु दुःख है शोक, परिदेव, दौर्मनस्य, उपायास भी दुःख है अप्रिय से मिलन तथा प्रिय से वियोग भी दुःख है चाहे हुए का न मिलना भी दुःख है, संक्षेप में पाँच उपादान स्कन्ध दुःख है—यह दुःख आर्यसत्य है।

बार बार जन्म में लाने वाली तृष्णा ही दुःख समुदय है। काम तृष्णा भवतृष्णा और विभव-तृष्णा के ही कारण सभी प्रकार के दुःख उत्पन्न होते हैं अतः तृष्णा ही दुःख समुदय आर्यसत्य है।

उसी तृष्णा का सर्वथा निरोध दुःख निरोध है। निर्वाण को प्राप्त करके दुःख का सर्वथा निरोध होता है, अतः तृष्णा का निरोध अर्थात् निर्वाण ही दुःख निरोध आर्यसत्य है।

आर्य अष्टांगिक मार्ग ही दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा आर्यसत्य है। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति सम्यक् समाधि—यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है। इसी को मध्यम मार्ग भी कहते हैं।

चार आर्यसत्यों के बिना ज्ञान प्राप्त किए जन्म-जरा मृत्यु से मुक्ति नहीं मिलती।

६. **धम्मादासो**—धर्म का आदर्श। धर्मादर्श चार हैं। इनसे युक्त व्यक्ति स्वयं जान सकता है कि उसकी सद्गति होगी, वह नरक में उत्पन्न नहीं होगा। वे चार धर्मादर्श हैं—(१) बुद्ध के प्रति अचल श्रद्धा का होना। (२) धर्म के प्रति अचल श्रद्धा का होना। (३) संघ के प्रति अचल श्रद्धा का होना। (४) उत्तम शीलों से युक्त होना।

७ **सोतापत्ति**—ज्ञान-प्राप्ति के चार मार्ग और चार फल होते हैं। स्रोतापत्ति मार्ग, सकृदागामी मार्ग, अनागामी मार्ग, अर्हत् मार्ग—ये चार मार्ग हैं। स्रोतापत्ति फल, सकृदागामी फल, अनागामी फल, अर्हत् फल—ये चार फल हैं।

स्रोतापन्न की अवस्था में सत्काय दृष्टि, विचिकित्सा तथा शीलव्रत-परामर्श दूर हो गए होते हैं। वह व्यक्ति सात जन्मों के भीतर ही ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसका आठवाँ जन्म नहीं होता। वह गृहस्थ-जीवन में हो या भिक्षु-जीवन में उसे सत्य का अल्प दर्शन हुआ रहता है। वह कभी भी नरक में नहीं उत्पन्न होता। सकृदागामी के क्लेश कमजोर पड जाते हैं, वह यहाँ से मरकर केवल एकबार ही और जन्म लेता है, फिर निर्वाण प्राप्त कर लेता है। अनागामी के निचले पाँच संयोजन दूर हो गए होते हैं, ऊपरी संयोजन ही रहते हैं। वह मरकर शुद्धावास ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है और वहीं निर्वाण प्राप्त कर लेता है। फिर कभी इस मर्त्यलोक में नहीं आता। अर्हत् अन्तिम अवस्था है। ज्ञान प्राप्त जीवन्मुक्त को ही अर्हत् कहते हैं। इस अवस्था में सभी क्लेश, संयोजन आदि नष्ट हो गए होते हैं और वह परम पूजनीय हो गया होता है।

८ **चत्तारो सतिपट्ठाना**—स्मृति-प्रस्थान चार हैं—(१) लोक में लोभ और दौर्मनस्य को त्याग कर काया में कायानुपश्यी होकर विहरना, (२) वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर विहरना, (३) चित्त में चित्तानुपश्यी होकर विहरना, (४) धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर विहरना। (विस्तार के

लिए देखिए दीघ नि महासतिपट्ठान सुत्त)।

९. चत्तारो सम्मप्पधाना—सम्यक् प्रधान चार हैं—(१) अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिए इच्छा, कोशिश, उत्साह करना मन लगाना। (२) उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के प्रहाण के लिए मन लगाना। (३) अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के लिए मन लगाना (४) उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति के लिए, घटती रोकने के लिए, वृद्धि करने के लिए, उनका अभ्यास करने के लिए तथा उन्हें पूर्ण करने के लिए इच्छा करना, कोशिश करना मन लगाना।

१० चत्तारो इद्धिपादा—ऋद्धिपाद चार हैं—(१) छन्द समाधि प्रधान संस्कार वाले ऋद्धिपाद की भावना करना (२) वीर्य-समाधि प्रधान संस्कार वाले ऋद्धिपाद की भावना करना, (३) चित्त-समाधि प्रधान-संस्कार वाले ऋद्धिपाद की भावना करना। (४) मीमांसा-समाधि प्रधान संस्कार वाले ऋद्धिपाद की भावना करना।

११ पञ्चिन्द्रियानि—पाँच इन्द्रियाँ ये हैं—(१) विवेक विराग निरोध तथा त्याग में लगाने वाले श्रद्धेन्द्रिय (२) वीर्येन्द्रिय (३) स्मृतीन्द्रिय (४) समाधीन्द्रिय (५) प्रज्ञेन्द्रिय।

१२. पञ्च बलानि—ये पाँच बल हैं—(१) श्रद्धा बल (२) वीर्य-बल (३) स्मृति-बल, (४) समाधि बल, (५) प्रज्ञा-बल।

१३ सत्त बोज्झङ्गा—बोधि कहते हैं ज्ञान को। ज्ञान-प्राप्ति के अंग हुए धर्म बोध्यङ्ग हैं। ये सात होते हैं—(१) स्मृति सम्बोध्यङ्ग (२) धर्म विचय सम्बोध्यङ्ग (३) वीर्य सम्बोध्यङ्ग (४) प्रीति सम्बोध्यङ्ग (५) प्रश्रब्धि सम्बोध्यङ्ग (६) समाधि सम्बोध्यङ्ग (७) उपेक्षा सम्बोध्यङ्ग।

१४ अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो—आर्य अष्टांगिक मार्ग ये हैं—(१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प (३) सम्यक् वाणी (४) सम्यक् कर्मान्त (५) सम्यक् आजीव (६) सम्यक् व्यायाम (७) सम्यक् स्मृति (८) सम्यक् समाधि।

परिशिष्ट—२

शब्दानुक्रम से